भूमिका

वर्तमानकालकी दशाकी ओर दृष्टि डालनेसे विदित हुआ कि इस समय भोज्य पदार्थ अर्थात् गोरस दही इत्यादि पूर्वकालकी अपेक्षा बड़ी कठिनाईसे मिलते हैं और वह भी बहुत कम। इसका कारण क्या है, इसको किसने हरण किया है? इस प्रश्न की ओर ध्यान देते ही मेरा हृदय हिंसाके कठोर तथा पापमयी परिणामोंसे संदग्ध हो गया? ऐसे दुःख उत्पादक तथा हानिकारक हिंसाके महापापकी पृथा नित्य प्रति बढ़ती ही जा रही है। यहाँ तक कि अब हिन्दू मुसलमानोंके पारस्परिक विरोधका मूल कारण भी यही हो रही है। इस हिंसा (बलिदान)-को कई मतावलम्बियोंने धर्मानुकूल मान रक्खा है। जिससे उनकी प्रकृति ऐसी बदल गई है कि वे इससे घृणा करनेके स्थान पर हर्ष मनाते हैं और अपने अपने धर्मशास्त्रोंकी आड़में पशु वध जैसे महान पापकी गठरी बाँधते हैं।

ऐसी दुरवस्थाको देख कर मुझे इस बातके खोज करनेकी उत्कण्ठा हुई कि यह वास्तवमें उन मतावलम्बियोंके धर्मशास्त्रों में पशुवध (बलिदान)-की आज्ञा है या केवल अविद्या तथा अंध विश्वासके कारण यह कुप्रथा चल पड़ी है जिसने वर्तमान समयमें ऐसा भयङ्कर रूप धारण कर लिया है। इस विचारमें

पूर्णतया सफलीभूत नहीं हुये। परन्तु अब समय अनुकूल है, क्योंकि तुम जैसे सुपुत्र मेरी दशाको देख स्नेहवश दुखी हो रहे हैं, तुम्हारी ऐसी दुःखमयी दीनावस्था मुझसे नहीं देखी जाती। इसलिये मैं अति प्रसन्न हो कर तुमसे यह भेद प्रगट कर रही हूँ। इस मेरी वाणीके श्रवण मात्रसे ही प्रत्येक मनुष्य अपने धर्म तथा कर्तव्यका स्वरूप समझ जायगा और ऐसे घोर अत्याचार तथा महान् पापसे स्वयं उसको घृणा उत्पन्न होगी।

मैं इस "गऊवाणी"को उन्हीं गोमाताके कथनरूपमें आप सज्जनोंके पठनार्थ समर्पण करता हूँ। गऊवाणी चूँकि स्वयं प्रमाणित होनेके कारण अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं रखती है इससे जहाँ २ अन्य प्रमाणोंकी आवश्यका हुई मैंने फुट नोट के तौर पर दे दिये हैं।

"गोसेवक"



शुद्धि अशुद्धि पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	किस ओरसे	अशुद्धि	शुद्धि
१	७	नीचेसे	सक्ती	सक्ता
३	४	ऊपरसे	matter=nature	matter
,,	११	,,	पच्चिमी	पश्चिमी
,,	१२	,,	मैकजूगज	मैकडूगल
,,	८	नीचेसे	being'	being,
,,	३	,,	which	in which
४	३	नीचेसे	कम्पिनी	कम्पनी
५	१२	ऊपरसे	कहीं	कहीं
७	६	नीचेसे	अन्तरीच	अन्तरिक्ष
१०	५	ऊपर	पार	वार
,,	११	,,	अमर्त्य	अमरत्व
१३	६	,,	परमाणु हीं	परमाणु
१८	६	,,	परमात्मा	परात्मा
२८	२	नीचेसे	आनन्दायक	आनन्ददायक
३८	३	,,	केवल अग्नि	इन देवताओंमेंसे अब केवल अग्नि ही
४०	२	ऊपरसे	सत्यविकास	तत्वनिकास

पृष्ठ	पंक्ति	किस ओरसे	अशुद्धि	शुद्धि
४०	४	ऊपरसे	संयोग आत्मिक	संयोगात्मक
४२	६	नीचेसे	अदम	अदन
४३	११	ऊपरसे	पूर्ण	प्रकाश
,,	३	नीचेसे	पसलीकी	पसलीसे
४६	६	,,	ज्ञान (wit)	जीव (will)
५३	६	ऊपरसे	गाड़े	गड़े
५४	६	ऊपरसे	इसीग्लेटियस	ग्लेटियंस
५५	३	,,	हो जावे	हो सकता है
५९	१	नीचेसे	बताया जा चुका	बताया जा चुका है
६०	२	,,	अध्याय १८	भागवत १८
,,	२	ऊपरसे	जीवन	जीवन्मुक्त

नोट—६१ पृष्ठका आखिरी पैराग्राफ़ अलग नहीं होना चाहिये

पृष्ठ	पंक्ति	किस ओरसे	अशुद्धि	शुद्धि
६२	१	नीचेसे	तोर	तौर
६६	,,	,,	तू	तो
६८	८	ऊपरसे	वूदे तो आमद वहदये	वूदे तो आमद वहद
,,	१२	,,	व आवाज़	व वांगे
,,	५	नीचेसे	तरीकत	दर तरीकत
,,	१	,,	अज़ाई	अज़ाँ
७०	४	ऊपरसे	ख़ुदा	ख़ुद
७५	५	नीचेसे	हेमन	एमन
७६	१	,,	फ़ाती	फ़ानी

पृष्ठ	पंक्ति	किस ओरसे	अशुद्धि	शुद्धि
७९	८	ऊपरसे	कि इसमें	इसमें
७९	९	नीचेसे	शास्त्रोंके	शास्त्रोंकी
८५	२	,,	को	के
८९	५	ऊपरसे	निमिन्त	निमित्त
९१	,,	नीचेसे	प्रसिद्ध	प्रसिद्ध है
९४	४	ऊपरसे	अहिंसा	हिंसा
९७	१	,,	सतत	सवत
९९	२	नीचेसे	३०.३१।	,, ९९।३०·३१
१०१	६	,,	को	के
११०	७	,,	प्रसंगवत्	प्रासंगिक
११९	९	ऊपरसे	मकोड़	मकोड़े
१२२	८	नीचेसे	अम्मारा	अम्मारा
१२४	९	,,	Sacar	sacer
,,	,,	,,	Facio	facio
,,	६	,,	अथवा पवित्र	पवित्र
,,	१२६	,,	उस	उसके





श्रीपरमात्मने नमः ।

पहिला परिच्छेद ।

धर्मका स्वरूप ।

गौ उवाच—धर्म एक विज्ञान या विद्या है जिसका अभिप्राय मनुष्यको संसारके दुःख और आतापसे निकालकर उत्तम सुखमें स्थिर करनेका है। मनुष्य सब कार्य अपने लाभार्थ करता है। बेमतलब या बिना प्रयोजन बुद्धिमान पुरुष कभी कोई कार्य नहीं करता है। धर्मसेवनसे मनुष्यका यही अभिप्राय है कि उसको अनन्त, अविनाशी, अक्षय सुखकी प्राप्ति हो, जो संसारी अवस्थामें नहीं मिल सकी है।

संसारमें लोगोंके धन, दौलत, मान, मर्यादा, भोग, विलास इत्यादि उद्देश्य हुआ करते हैं परन्तु ये सबके सब केवल इन्द्रिय-सुख हैं जो वास्तवमें सुख नहीं हैं वरन् सुख-आभास हैं अर्थात् वास्तवमें सुख तो नहीं हैं मगर स्थूलदृष्टिसे देखनेवालोंको सुख समान भासते हैं। इसका कारण यह है कि ये सबके सब क्षणिक हैं। आत्माकी तृप्ति इनसे नहीं हो सकी है और

इनके सेवनसे जो खराबियां इस जीवनमें और आगामी जीवनमें होती हैं उनकी उपमा शहद से ढकी हुई खड़गकी धारको दी गई है जो मिठास तो रखती है परन्तु जिह्वा और हलकको काट डालती है। निशि वासर सुख भोगते भोगते भी इन्द्रियोंकी तृप्ति नहीं होती इसलिये इन्द्रियोंको दहकती हुई अग्निकी भांति कहा है क्योंकि जितना ही घी अग्नि पर डाला जाय उतनी ही उसकी ज्वाला और प्रचण्ड होती है।

विषय भोगोंका स्वरूप यह है कि कोई वाह्य पदार्थ क्यों न हो, चाहे उसे मनुष्यने स्वतः प्राप्त किया हो, चाहे किसी देवी देवताने प्रसन्न होकर उसे दिया हो, प्रत्येक पदार्थ इन्द्रियोंद्वारा ही भोगा जा सक्ता है और इसी कारण सर्व पदार्थ इन्द्रियसुख-को ही दे सक्ते हैं। उनके द्वारा कोई ऐसा सुख नहीं मिल सक्ता जो अक्षय अविनाशी और अनंत हो।

मूर्ख लोग संसारकी चमक दमक और वेष भूषाको देखकर प्रसन्न होते हैं और यहां महलसरा बना कर कयाम करना चाहते हैं परन्तु मृत्यु किसी क्षण इस बातको जताने और याद दिलानेमें त्रुटि नहीं करती कि यह दुनियां केवल एक प्रकारकी सराय है कि जहांपर सदैवके लिये ठहरना सर्वथा असम्भव है। ऐसा स्वरूप प्राणियोंके नित्य सुखकी इच्छा और संसारमें सुखकी असंभवताका है। बुद्धिमान पुरुष आत्मा, इच्छाओं व संसार तीनोंके स्वरूप पर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करता है।

मैंने पूछा—माता! आत्मा भी कोई पदार्थ है? पश्चिमी

देशके पुद्गलवादी तो चेतनाको अनित्य सिद्ध करते हैं फिर धर्म-की आवश्यकता ही क्या है ? जो मर गया सो गया धर्म उसका क्या करेगा ?

माताने उत्तर दिया: —आत्मा पुद्गल (Matter=nature=प्रकृति)-से विभिन्न जातिका एक द्रव्य है। चेतना उस आत्म-द्रव्यका गुण है इसीको जीवद्रव्य भी कहते हैं। पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि होते हैं। यह आत्मद्रव्यमें स्वभावसे नहीं होते आत्मा अखण्ड द्रव्य है। जो पदार्थ अखण्ड होता है वह अविनाशी भी होता है अर्थात् वह अनादि अनन्त होता है। इस प्रकार प्रत्येक जीव एक अखण्ड और अविनाशी पदार्थ है। पश्चिमी बुद्धिमानोंने भी आत्माको अखण्ड माना है। डेब्ल्यू. मैकडूगलकी रची हुई फिज़ियालोजिकल साइकालोजी टेम्पिल प्राइमर सिरीज़ पृष्ठ ७८–७९ (Physiological Psychology Temple Primer series pages 78--79)-में लिखा है—

" We are compelled to admit, or so it seems to the writer as to many others, that the so called psychical elements are not independent entities, but are partial affections of a single substance or being' and since this is not any part of the brain, is not a material substance, but differs from all material substance in that, while it is unitary, it is yet present, or can act or be acted upon, at many points in space simultaneously (namely the various parts of the brain which psycho—physical processes are at any moment occuring), we must regard it as an immaterial substance or being. And this being, thus necessarily postul-

ated as the ground of the unity of the individual consciousness, we may call the soul of the individual."

इसका अर्थ यह है कि:—

"हम बाध्य हैं इस बातके माननेकेलिये अर्थात् मुझको और बहुतसे लोगोंको ऐसा ज्ञात होता है कि अनुभवसंबन्धी विभाग व अंश पृथक् पृथक् पदार्थ नहीं हैं वरन् एक ही द्रव्य वा पुरुष (सत्ता)के एकदेश भाव हैं। और चूँकि यह भेजेका कोई भाग नहीं है और कोई पौद्गलिक पदार्थ नहीं है बल्कि सब पौद्गलिक पदार्थोंसे इस कारणवश विभिन्न है कि यह व्यक्तित्व-गुणसे भूषित है और तिसपर भी आकाशके बहुतसे प्रदेशोंसे कर्तव्य-परायण होता है (अर्थात् भेजेके विविध स्थानोंसे जिनमें चेतना संबन्धी कार्यवाही प्रत्येक क्षण चालू रहती है) इसलिये हमको यह ज़रूर मानना पड़ता है कि वह कोई अपौद्गलिक द्रव्य वा व्यक्तित्व (सत्ता) है। और इस सत्ताको, जिसका व्यक्तिगत चेतनाके एकपने (अखण्डता) के आधारके तौर पर मानना ज़रूरी है, हम व्यक्तिकी आत्मा कह सके हैं।"

यह आत्माका स्वरूप जो पश्चिमी बुद्धिमानोंको बड़ी कठिनाईसे अब विदित हुआ है भारतके ऋषि महात्मा सदैवसे जानते आये हैं। आत्मा अखण्ड है इसी कारणवश कभी कोई मनुष्य अपने आपको समूहरूपमें नहीं देखता है न कम्पिनी या लोर्डकी भांति कभी कोई मनुष्य अपने आपको जानता है कि जहां बहुपक्षका प्रश्न उत्पन्न हो। इसलिये आत्मा वास्तवमें कभी

मृत्युको प्राप्त नहीं होता है शरीरकी अपेक्षासे मरण जीवन होता है; द्रव्यकी अपेक्षा आत्मा नित्य और अविनाशी है। यह आत्मा सर्वज्ञ भी है।

मैंने पूछा—माता! आत्माकी सर्वज्ञताका प्रमाण क्या है। इसको माननेकेलिये तो कोई भी प्रस्तुत न होगा।

माताका उत्तर:—आत्माके सर्वज्ञ होनेमें संदेह नहीं। जैनमत और हिन्दुमतके कुछ दर्शनोंनें और बुद्धमतमें स्पष्टरीतिसे आत्माको सर्वज्ञ माना गया है। उसकी सर्वज्ञताका समाधान यूँ है कि द्रव्यके गुण एकसमान हुआ करते हैं, जैसे सोना, चाहे जिस देशमें हो उसके गुण सदैव एक ही प्रकारके होंगे। भेद केवल खोटकी वजहसे होगा कि कहीं उसमें खोट अधिकांशमें पाया जायगा कहीं कम। परन्तु जहां कहीं शुद्ध सोना मिलेगा उसके गुण सदैव एकही प्रकारके होंगे। यही दशा आत्माकी है। ज्ञान व दर्शन आत्माके निजी गुण हैं और यह प्रत्येक आत्मामें विद्यमान हैं। यद्यपि कहीं तो यह प्रगट हैं और कहीं छुपे हुये हैं। कहीं कम हैं, कहीं अधिक। अस्तु; जो बात एक आत्मा जानता है उसको और सब आत्मायें भी जान सक्ती हैं। इसलिये प्रत्येक आत्मामें उन सब बातोंको, जिनको गतकालमें किसी व्यक्तिने जाना था, जिनको आज कोई व्यक्ति जानता है और उन सबको भी जिनको आगामी कोई व्यक्ति जानेगा, जाननेकी योग्यता है। अर्थात् हर आत्मामें यह योग्यता है कि तीनों लोकों और तीनों कालोंके सर्व ज्ञेय पदार्थोंको जान सके और यह भी स्पष्ट

है कि कोई ऐसा पदार्थ न कहीं है, न हुआ होगा और न कहीं होगा, जिसको जाननेकी आत्मामें योग्यता न हो। कारण कि ज्ञेय पदार्थके अतिरिक्त कोई Unknown (अज्ञेय) पदार्थ नहीं हो सक्ता है क्योंकि विना प्रमाणके किसी वस्तुका अस्तित्व माना नहीं जा सक्ता है और प्रमाण उस वस्तुका, जिसको कभी कोई जान ही नहीं पावेगा, कैसे संभव है! अतः Unknown (अज्ञेय) कोई पदार्थ नहीं हो सक्ता है और known वा knowable अर्थात् ज्ञेय पदार्थोंका जहांतक संवन्ध है वहांतक प्रत्येक आत्मामें समस्त वस्तुओं और हालतोंके जाननेकी शक्ति विद्यमान ही है। अतः प्रत्येक आत्मामें सर्वज्ञता स्वभावसे ही मौजूद है। वास्तविकता यह है कि आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप व ज्ञानमयी है। जीव द्रव्यकी ही दशाओं वा परिवर्तनोंका नाम ज्ञान है। आत्माके वाहर तो पदार्थ हैं, ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो स्वयं आत्माका दिव्य प्रकाश है।। अनन्त ज्ञानके साथ आत्मामें अनन्त दर्शनकी शक्ति भी विद्यमान है। यह आत्मा वास्तवमें वडो अद्भुत शक्तिवाला द्रव्य है। ज़रा विचार तो करो कि वाहरी पदार्थोंके दर्शनका क्या भाव है? आंख खुली नहीं कि एकदम आधी दुनियां प्रकाश व रूपसे चमकती हुई आंखके समक्ष मौजूद है। भला क्या यह किसी प्रकार कुलकी कुल आंखके भीतर घुस जाती है! वाहरसे तो केवल कुछ सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओंकी किरणें वा लहरें ही जिनको अँग्रेज़ीमें Vibrations कहते हैं चक्षुओं पर पडती हैं और चक्षु इन्द्रियसे मिली हुई नाडियोंपर अपना प्रभाव

डालती हैं। आत्मासे तो उनका मिलाप कहीं दूर अन्दर जाकर होता है। और यह भी नहीं है कि आत्मा ही चक्षुद्वारा बाहर निकल खड़ा होता है। और यदि ऐसा हो भी तो भी उसको दर्शन कैसे हो सक्ता है? अतः जब आत्मा जहांका तहां है और बाहिरी दुनियां भी जहांकी तहां है और केवल कुछ सूक्ष्म परमाणु ही बाहरसे आत्मा तक पहुंचते हैं तो क्या यह करश्मा नहीं है कि आत्मा भीतर बैठे बैठे ही सब कुछ देख सक्ता है। यथार्थता यह है कि दर्शन भी जीवद्रव्यकी पर्याय है, बाहिरी इन्द्रियोंके प्रक सामग्रीके आश्रय पर जो परिवर्तन आत्मामें होता है उसीके अनुभवका नाम दर्शन है। और अब अगर तुम इस बात पर विचार करोगे कि यह परिवर्तन आत्मामें सर्व देश नहीं होता है बल्कि केवल उसके एक देशमें होता है और वह भी उतने हीमें जितनेसे चक्षु इन्द्रियकी भीतरी सूक्ष्म नाडियोंका सम्बन्ध है तो तुम इस बातको सहजमें ही समझ जाओगे कि यदि आत्माकी प्रकाशशक्ति एक देश ही नहीं बल्कि सर्वांग व सर्व देशमें जागृत हो जाय तो कितना अपूर्व व अनन्त दर्शन उसको होगा। अतः प्रत्येक आत्मा स्वभावसे ही अनन्त दर्शनके गुणसे भी पूरित है और यही अद्भुत बात यह है कि अन्तरीक्ष दर्शन संसारके पदार्थोंको ज्योंका त्यों जहांका तहां दर्शाता है।

मैंने विनय किया:—कि माता यह तो मैं भली प्रकार समझ गया कि हर आत्मा स्वभावसे अमर और सर्वज्ञ है परन्तु अब मैं यह जानना चाहता हूं कि आत्माको अविनाशी सुख भी क्या किसी भांति प्राप्त हो सकता है?

मातने उत्तर दिया:—हां ! हर आत्मामें इस बातकी योग्यता है कि वह अनन्त अविनाशी सुखको प्राप्त करे। आत्मा स्वभावसे ही आनन्दस्वरूप है। सांसारिक सुख दुःख तो पदार्थों के संयोग वियोगसे उत्पन्न होते हैं या मनकी कल्पना द्वारा उत्पन्न होते हैं। परन्तु वह आनन्द बल्कि परमानन्दकी अवस्था जो कि उससमय आत्माके अनुभवमें आती है, जब वह इष्टवियोग व अनिष्ट संयोगके बखेडोंसे मुक्त होता है, स्वयं आत्माके भीतर से ही उत्पन्न होती है और इसलिये आत्माके वास्तविक स्वरूप-को प्रगट करती है। योगीश्वरोंको जो शांति और आनन्द योग-समाधिमें प्राप्त होता है वह कहीं उनके बाहरसे नही आता। कारण कि आत्माके बाहर किसी स्थान पर आनन्दकी गोलियां नहीं बिकती हैं कि जिनके खानेसे सुखकी प्राप्ति हो। बल्कि बाहरसे तो जो पदार्थ आत्मामें प्रवेश कर सक्ता है वह केवल इन्द्रियसुख ही हो सक्ता है जो क्षणिक है और अन्तमें अशांति-का दाता है और वास्तविक सुखसे विपरीत है। उस आन्तरिक आत्मिक परमानन्दके समझनेकेलिये जिसका अनुभव योगी-श्वरोंको होता है एक दृष्टांतकी आवश्यकता है। देखो! जब कोई कार्य जिसकेलिये परिश्रम करते हो, सफलताको प्राप्त होता है तो उससमय जो आनन्द प्राप्त होता है वह कहांसे आता है? मान लो कि तुम वकालतकी परीक्षा दे कर उसके फलकी बाट देख रहे हो फिर तत्क्षण एक तार तुम्हारे पास आता है कि तुम परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। अब बताओ कि वह आनन्द जो

तुमको तारके बांचनेसे प्राप्त हुआ कहांसे आया ? क्या उस कागज़में भरा हुआ था जिस पर तारकी सूचना लिखी थी या उसके शब्दोंमें था ? नहीं ! क्योंकि वैसे कागज़ तुमने सहस्रों दफा देखे हैं और वे शब्द तो कोषोंमें ही लिखे हुये हैं परन्तु कभी तुम उनको पढ़ कर आनन्दित नहीं हुये। अतः यह स्पष्ट है कि परीक्षामें उत्तीर्ण होनेकी सूचना पर जो आनन्द मनुष्यको प्राप्त होता है वह भीतरसे आता है बाहरसे नहीं। और इसी कारण से उत्पन्न होता है कि सूचनाके पहुँचनेसे जो आत्माके पर्यायमें परिवर्तन होता है वह स्वयं सुखमयी है। भावार्थ यह है कि सूचनाके मिलनेसे एक दम उन समस्त कठिनाईयों, परेशानियों और कष्टोंका जो वकालतकी पढ़ाईके कारण तुमको झेलनी पड़ती थीं विनाश हो गया और उनके नष्ट हो जानेके कारण आत्मा क्षणमात्रकेलिये अपने स्वाभाविक स्वरूपमें एक अंश तक उपस्थित हो गया। स्वभावसे ही परमानन्दस्वरूप होनेके कारण आत्माका अपने स्वरूपमें उपस्थित होना ही आनन्दमयी है। जिसका अनुभव तुरन्त होने लगता है। इसी कारण योगीश्वर और महामुनि बाहरी संसारकी ओरसे दृष्टि फेर कर अपने स्वात्म-अनुभवमें लीन हो कर अक्षय सुखका अनुभव करते हैं। इसीकी प्राप्तिकेलिये मुनीश्वरोंने कठिनसे कठिन तप किये हैं। यह आनन्द जो निजानन्द कहलाता है किसी बाह्य सुखप्रदायक सामिग्रीके आधीन नहीं है। यह पूर्णरूपसे स्वाधीन है। इसका भोक्ता अपने निज स्वरूप व स्वभावमें यथार्थ परमानन्दका स्रोत

पाता है और उसके अनुभवमें मग्न रहता है । जितनी जितनी स्वतन्त्रता अधिक बढ़ती जाती है इतना ही यह आनन्द स्वभावसे अधिक व पूर्ण होता जाता है । इस कारणसे कि परमानन्द आत्मिक गुण है और गुण और गुणीमें कभी वास्तविक रीतिसे पृथक्ता नहीं हो सक्ती है । इसलिये यह परमानन्द एक बार पूर्णतया प्राप्त हो जानेके पश्चात् फिर कभी कम नहीं हो सक्ता ।

यह वास्तविक आनन्द इन्द्रियसुखोंकी भांति पराधीन नहीं है, न क्षणिक है, न अन्तमें दुःख उत्पादक ही होता है वरन् यह वह निजानन्द है जो मुक्त परमात्माओंको प्राप्त होता है, जो अनुपम है और पूर्ण आत्मिक स्वतंत्रताका चिह्न है ।

अतः आत्मा स्वभावसे सर्वज्ञता, अमर्थ और परमानन्दके गुणोंसे भूषित, अखण्ड, अपौद्गलिक और ज्ञानके परम ज्योतिके स्वरूपवाला, अपनी सत्तामें स्वतंत्र, पराधीनतासे रहित, मृत्यु दुर्भाग्य असमर्थता व निर्बलताका विरक्षी और इसलिये अनंत शक्तिमान है। यही सब गुण प्रत्येक जीवधारीकी आत्मामें स्वभावसे ही विद्यमान हैं। और पूर्णरूपमें मौजूद हैं। ऐसे नहीं कि किसीमें स्वभावसे कम हों वा किसीमें अधिक । यही गुण हैं जो पूज्य ईश्वरीय गुण माने गये हैं। स्वाभाविक गुणोंकी अपेक्षा परमात्मा वा ईश्वरमें और साधारण आत्मामें कोई भेद नहीं है। भेद केवल इतना है कि संसारी आत्मामें यह गुण इस समय अपना पूरा कर्तव्य नहीं करते हैं और दबे पड़े हैं । मिसाल इसकी पानीकी बूँदकी है जो वास्तवमें दो प्रकारकी गैसों

(पवनकी किसके पुद्गल) अर्थात् हाइड्रोजन और आक्सीजनके मिलनेसे बनी है। परन्तु जब तक वह गैसें पानीके रूपमें एक दूसरेसे मिली रहती हैं तब तक उनके स्वाभाविक गैसवाले गुण कार्यहीन रहते हैं। यही अवस्था संसारी जीवकी है जो वास्तवमें तो परमात्मा है परन्तु जब तक वह पुद्गलसे मिश्रित व वेष्ठित रहता है उस समय तक उसका परमात्मापन कार्यहीन रहता है और दिखाई नहीं देता। और जिस प्रकार पानीकी दशामें संयुक्त गैसोंका स्वभाव नष्ट नहीं हो जाता वरन् उपस्थित रहता है, और उक्त गैसोंके एक दूसरेसे प्रथक् हो जाने पर झट प्रगट हो जाता है, इसीप्रकार आत्माका यथार्थ स्वभाव भी नष्ट नहीं हुआ है बल्कि पुद्गलके मिलापके कारण केवल अप्रगट अर्थात् दबा हुआ है। इस पुद्गलसे छुटकारा हो तो आत्मा परमात्मा हो जाय। हे पुत्र! ऐसा अद्भुत स्वरूप इस जीवका है।

मैंने प्रश्न किया:—आपकी महती कृपा तथा दयासे मैं अपना अर्थात् आत्माका वास्तविक स्वभाव व गुण तो भलीप्रकार समझ गया। परन्तु पुद्गलका स्वरूप जो इसमें आपने मिश्रित बतलाया है उसका रूप मैं नहीं समझा कि वह क्या पदार्थ है और किस प्रकार आत्मा तक आता है और कैसे उसके द्वारा आत्माके यथार्थ गुणोंका घात होता है?

माताने उत्तर दिया:—हे पुत्र! यह शरीर जो जीवके साथ लगा हुआ है यह मृतक अचेतन पदार्थ ही पुद्गलद्रव्यका बना हुआ है इस मृतकका सम्बन्ध ही गज़ब है और बड़ा

हानिकारक है। यह भी नहीं है कि यह मुर्दा जीवके आधीन हो बल्कि यहां तो विषय "ज़िन्दहबदस्त मुर्दह" (अर्थात् जीवतेके मुर्देके हाथमें होने)-का है। यह बन्दीखाना है जिसमें आत्मा बंधुआके सदृश है। यद्यपि इसीके कारण आत्मा चलता फिरता है। फिर यह कैद कैसी है कि इसके भीतर ज़रा भी हिलने जुलनेकी गुंजाइश नहीं है। यदि कोई मनुष्य इसमें शङ्का करे तो उससे मेरा प्रश्न है कि तुम तो आत्मा हो और यह शरीर पुद्गल है जो तुमसे भिन्न द्रव्यका है तो फिर इसमेसे निकल क्यों नहीं आते हो। इससे विदित होता है कि जीव और पुद्गल मिलकर कुछ अंश एकमेक हो गये हैं। यही कारण है कि जिससे उसके स्वाभाविक गुण घाते गये हैं, जैसे-हाइड्रोजन व आक्सीजनके स्वाभाविक गुण जब वह मिल कर पानीकी पर्यायमें उपस्थित होती हैं, घाते जाते हैं। अब इस पुद्गलका आत्माकी ओर आना कैसे होता है ? वह इस प्रकार है कि इस पुद्गलके आगमनकी आत्मामें तीन प्रणालियां हैं जिनको मन, वचन और काय कहते हैं। इनके द्वारा सूक्ष्म पुद्गल वर्गणायें हमेशा आत्मामें मिलती रहती हैं। देखो ! जब ध्यान जिह्वापर धरे हुये कौरकी ओर नहीं होता है तो उसका स्वाद नहीं आता है। और जब ध्यान उधर होता है तो स्वाद आता है । दोनों दशाओंमें कौर तो एक ही द्वारसे प्रविष्ट हो कर एक ही मार्ग द्वारा चल कर एक ही स्थान पर पहुँचता है परन्तु इसका क्या कारण है कि एक दशामें तो उसका स्वाद आया और दूसरीमें नहीं ? इसका उत्तर यह है कि

जीवके ध्यानमें यह विशेष शक्ति है कि उसके द्वारा आत्मा पदार्थों के सूक्ष्म परमाणुओंको अपनी ओर खींच लेता है। इसलिये जब ध्यान मुँहके कौरकी ओर होता है तो इस आकर्षण शक्तिके द्वारा आत्मा उसमेंसे स्वादकी सूक्ष्म पुद्गल वर्गणाओंको अपनी ओर खींच लेता है। और जब इसका ध्यान कहीं और होता है तो रसके परमाणु ही जिह्वा और हलकसे उतर कर पेटमें जा पड़ते हैं परन्तु आत्मासे मिल नहीं पाते हैं। रसके सूक्ष्म परमाणुओंके आत्मासे मिल जानेका कीमियाई असर यह होता है कि उसमें एक नवीन दशा अर्थात् State of Consciousness (ज्ञानपरिणति) उत्पन्न हो जाती है। और इस नवीन दशाका नाम स्वाद या स्वादका अनुभव है। ध्यानका ऐसा प्रभाव है। उससे आत्मामें आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण यह पुद्गलद्रव्यको अपनी ओर खींचता रहता है और उससे मिश्रित होता रहता है। अब ध्यानका भावार्थ यहांपर सीधासादा इच्छा है। क्योंकि प्राणीको जिस वस्तुकी इच्छा होती है उसीकी ओर उसका ध्यान होता है। अस्तु, यह प्रगट है कि जीव और पुद्गलका मेल इच्छाके कारण होता है। इस पुद्गलके मेलको द्रव्यकर्म कहते हैं। इच्छाका यह परिणाम तो जीव और पुद्गल के मेलकी अपेक्षा है। इसका दूसरा परिणाम भावोंकी अपेक्षा है जिसको भावकर्म कहना चाहिये। भावोंकी अपेक्षा इच्छासे रागद्वेषकी उत्पत्ति होती है क्योंकि इष्ट वस्तुसे राग होता है और अनिष्ट वस्तुसे द्वेष। और रागद्वेषमें ही क्रोध मान माया लोभ

गर्भित हैं जो आत्मज्ञानमें अत्यन्त बाधक हैं। यह आत्मा अपनी इच्छाओं और क्रोधादि परिणामोंके वश अनादिकालसे आवागमनमें है। कभी आज तक इसको अपना बोध नहीं हुआ और न इसने कभी गत समयमें अपनी स्वाभाविक पूर्णताको प्राप्त किया क्योंकि यदि यह कभी परमात्मापनकी स्वतंत्रताको प्राप्त हुआ होता तो यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनंत शक्तिमान और परमानन्दका भोगनेवाला होता और तीनों लोकमें ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो ऐसे पूज्य गुणोंसे सुशोभित परमात्माको फिर पकड़ कर आवागमनके चक्करमें डाल दे। अस्तु, यह सिद्ध है कि यह जीव गतसमयमें कभी पुद्गलके मेलसे पाक न था अर्थात् कभी शुद्ध दशामें न था। ऐसा स्वरूप कर्मोंके आस्रवका है जो मैंने तुमसे कहा।

मैंने कहाः—आवागमनका सिद्धांत आपके वचनोंद्वारा तो स्पष्टतया सिद्ध है। क्योंकि यह बात तो बहुत ठीक है कि जो जीव अनादिकालसे विद्यमान है वह अवश्य आवागमनके चक्करमें रहा होगा। परन्तु इसका कारण मेरी समझमें नहीं आया कि लोगोंने ऐसी सहज बातके न समझनेमें धोखा क्यों कर खाया?

माताका उत्तरः—आवागमनके सिद्धांतमें तनिक भी संदेह नहीं है केवल अज्ञानका पर्दा पड़ा हुआ है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता है कि एक जीवने एक शरीरसे निकल कर दूसरे शरीरमें प्रवेश किया। इसी कारणसे कुछ लोग इस

वर्तमान समयमें इस आवागमनके मसलेसे इन्कार कर बैठे हैं वरना केवल चार्वाक मतमें ही इसको नहीं माना गया था। बौद्धमतावलंबियोंने भी इस सिद्धांतको स्वीकार किया यद्यपि वे आत्माको नित्य नहीं मानते हैं। जिन व्यक्तियोंको यह सिद्धांत अस्वीकार है उनसे पूछो—आत्मा कोई पदार्थ है या नहीं? अब अगर वह कहें कि हां! हम आत्माको मानते हैं तो उन से पूछो कि वह आज तक शुद्ध अवस्थामें था वा अशुद्धमें। अगर वह उत्तर दें कि वह शुद्ध अवस्थामें था तो वह बात भी अभी मिथ्या प्रमाणित हो चुकी है। कारण कि शुद्ध जीव तो ईश्वर परमात्मा ही है और उनका आवागमनमें गिरना वा गिराया जाना नितान्त बुद्धिके विपरीत है। बस केवल एक ही उत्तर अवशेष रह जाता है और वह यह है कि जीव अशुद्धदशामें अनादिकालसे अब तक कार्यहीन (Function-less) पड़ा रहा और अब इस अनन्त समयके व्यतीत हो जाने पर एकदम जन्म धारण कर बैठा। इस संसारमें जीव अनंत हैं और उनकी दशायें और जीवनकी गतियां भी बहुत प्रकारकी हैं। अगर गत समयमें सब जीव कार्यहीन चुपचाप पड़े रहे तो उनमें योनियों और दशाओंके अन्तर कैसे हो गये? और अन्तर भी कैसे कि एक बुद्धिमान है तो दूसरा मूर्ख। एक अन्धा है तो एक सूजता, एक मोक्षका खोजी है तो दूसरा नरकगामी, कोई धनवान है कोई निर्धन है, कोई तन्दुरुस्त व खूबसूरत है तो कोई रोगी व कुरूप है। यह भेद तो मनुष्योंके हैं। मनुष्यों और पशुओं और वन-

स्पति आदिके अन्तर तो और भी बड़े हैं। क्या किसी देवी देवताने इनकी ऐसी दशायें बना दीं, और बिना अपराध ही? अगर ऐसा हो तो देवी देवता संसारी जीवकी भांति अन्यायी व रागी द्वेषी ठहरते हैं। और नहीं तो मानना पड़ेगा कि जीवों-का वर्तमानका जन्म कोई अनोखी अलौकिक घटना नहीं है जो अनादिकालसे उपस्थित जीवके जीवनमें प्रथमवार ही हुई हो बल्कि एक प्राकृतिक नियम है जिसके अनुसार अशुद्ध जीवका नित्य जन्म मरण हुआ करता है जबतक वह मोक्ष न पा ले। आत्माके सम्बन्धमें अशुद्धताका अर्थ ही यह है कि वह शरीर-धारी हो। अतः जब वह इस जन्मसे पहले अशुद्ध अवस्थामें था तो शरीरधारी तो अवश्य ही हुआ। जिससे यह सिद्ध होता है कि पहले शरीरके मृत्यु होनेपर ही यहां जन्म हुआ है और यह भी नहीं है कि हम ऐसा मान लें कि किसीने इस स्वभावसे पूज्य आत्माको पौद्गलिक अपवित्रतामें लपेटकर कहीं डाल रक्खा था जिससे वह शरीरधारी तो नहीं था परन्तु बिल्कुल ज्योंका त्यों कार्यहीन, इस तमाम अनन्तकालमें जो गत समयका अर्थ है पड़ा रहा। यहां भी यदि किसी ईश्वर परमात्माने ऐसा काम किया तो अत्यन्त घृणित काम किया। मगर वास्तवमें यह बहस भी सर्वथा व्यर्थ है। क्योंकि केवल बाहरसे पुद्गलमें लिप्त होनेसे आत्माके यथार्थ परमात्मापनके गुणोंका घात नहीं हो सक्ता है। गुणोंका घात करनेकेलिये तो यह आवश्यक है कि जीव और पुद्गल जीवके आन्तरिक भावों अर्थात् इच्छा द्वारा मिलकर एक-

मेक हो जावें जो शरीर धारण करनेका भाव है। और जीवन्मुक्त जीव तो शरीरमें रहते हुये भी सर्वज्ञ होते हैं और परमानन्दका अनुभव करते हैं। क्योंकि उनके शरीर तो होता है परन्तु घातिया कर्मोंका अभाव हो जाता है। कमसे कम यही दशा उस आत्माकी होगी जो पुद्गलमें लिपटा हुआ है मगर शरीरधारी नहीं है। अस्तु, यह प्रगट है कि गत समयमें बराबर यह आत्मा शरीरधारी रहा है। नहीं तो यह परमात्मा होता और इसका फिर शरीर धारण करना नितांत असम्भव होता। जीवात्मा और परमात्मा का भेद अब स्पष्ट है। गुणोंकी अपेक्षा जीवात्मा और परमात्मा एक ही द्रव्य हैं और समान हैं। पर्याय अर्थात् अवस्थाकी अपेक्षा परमात्मा शरीर व कर्मबन्धनसे मुक्त, वांछाओं व कांक्षाओंसे रहित, निजानन्दके परम सुखमें लीन, अक्षय अविनाशी पदमें विराजमान है और इसके विरुद्ध जीवात्मा शारीरिक संयोगके कारण सब प्रकारकी अशांतियों आतापों बन्धनों और झगड़ोंमें फंसा हुआ यमराजके चुंगलमें पड़ा हुआ है। धर्म सिखलाता है कि संसारी जीव भी अपने आतापों संतापोंसे निकल कर कर्मबन्धनोंको तोड़ कर देहरहित शुद्ध आत्मिक छविको प्राप्त होकर साक्षात् परमात्मस्वरूपको धारण कर सक्ता है। इस परमात्मपदकी प्राप्तिका उपाय एक स्वात्म-अनुभव है। जिसके द्वारा वह आकर्षण शक्ति जो सूक्ष्म पुद्गल वर्गणाओंको खींच कर आत्मामें मिलाती रहती है, नष्ट हो जाती है। अतः स्वात्म-अनुभव ही मोक्ष का मार्ग है।

मेरा प्रश्न:—माता ! मैं अपना वास्तविक स्वरूप तथा आवागमनका चक्र और पुद्गलका आस्रव आदि भली प्रकार समझ गया हूं। परन्तु आपने अभी कहा है कि मोक्ष अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूपमें विराजमान होना स्वात्म-अनुभवका फल है। स्वात्म-अनुभव मैं भली प्रकार नहीं समझ सका हूं कृपया इसे विस्तारपूर्वक वर्णन करके मेरा बोध कीजिये।

माताका उत्तर:—पुत्र ! स्वात्म अनुभवमें दो पद हैं। एक स्वात्मा और दूसरा अनुभव। जिस पदार्थका अनुभव करना है वह स्वात्मा है। परमात्माका अनुभव न तो सम्भव ही है और न वास्तविक आनन्दका कारण हो सक्ता है। अब यह अमर साफ हो गया कि स्वात्म अनुभवकी आवश्यक्ता इसलिये है कि सांसारिक सुखोंसे अवतक तेरी तृप्ति नहीं हुई और न आगामी हो सक्ती है वल्कि उन्होंने तो तुझे स्वात्माके ज्ञानसे जो साक्षात् परमात्मा है वञ्चित रक्खा है। कौन पदार्थ है जिसको आत्माने गत समयमें हज़ारों लाखों वार नहीं भोगा। गत समयका परिमाण विचारणीय है। करोड़ दो करोड यहां कोई चीज़ नहीं है अर्वों खर्वोंसे भी काम नहीं चलता असंख्यात स्वयं अपूर्ण पैमाना है। अनन्तकी गिनतीसे छोटा कोई शब्द गत समयके भावको पूर्णतया प्रगट नहीं कर सक्ता। यह आत्मा अनादि अनं है और इस गत अनादि अनंतकालमें वरावर सर्व प्रकारके विषय भोगोंको विविध योनियोंमें भोगता रहा है तिस पर भी इसक तृप्ति कभी नहीं हुई। और न कभी स्वात्म अनुभवके विना हो

सम्भव है । स्वात्म अनुभवका स्वरूप इस प्रकार है—

दोहा—निजमें निजको आपसे, निज द्वारा निज काज ।
निज लखि मानूँ अनुभऊँ, निजानन्द रसराज ॥

दूसरा पक्ष स्वात्म-अनुभवका 'अनुभव' है । यद्यपि शब्द 'अनुभव' साधारण शब्द है और नित्यप्रति मनुष्य इसका प्रयोग करते हैं तो भी इसकेलिये दार्शनिक विचारकी आवश्यकता है । यदि ऐसा नहीं है तो स्वात्मा तो तुम हो ही, स्वयं अपना अनुभव भी कर लो । समाजों लेक्चरों व उपदेशकोंकी आवश्यक्ता ही क्या है ? यथार्थता यह है कि वह काम जो सबसे सरल होना चाहिये कर्मबन्धनके कारण अत्यन्त दुस्तर हो रहा है । आश्चर्य की बात यह है कि जीव अपना अनुभव करना चाहे और फिर न कर सके । किसी दूसरेका अनुभव हो तो दूसरी बात थी तब तो वह उस दूसरे व्यक्तिकी मर्जी पर अवलम्बित होता । किन्तु यहां तो जीव स्वयं उपस्थित है और स्वयं अनुभव करनेको भी प्रस्तुत है । फिर भी सफलता नहीं होती । कोई कहता है कि मुझे Concentration (चित्तका एकाग्र होना) नहीं होता । कोई कहता है मुझे मेडीटेशन (Meditation=ध्यान) सिखा दो । कोई भक्तिमार्गमें अटका पड़ा है । कोई कहीं टकरा रहा है और कोई कहीं उलझ रहा है । इनसे तो प्रतीत होता है कि स्वात्म-अनुभव कोई सरल बात नहीं है । शास्त्रोंका भी यही कथन है कि प्रथम विवेकसे श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धाके उत्पन्न होने पर तीन चार योनियोंमें मोक्ष होती है ।

मोक्षसुंदरीसे ऐसे संतमेंतमें चट मंगनी पट विवाह नहीं हो
जाता। क़ायदे और तरीक़ेसे प्रत्येक काम करना होता है।
सिर्ड़ीपनसे कुछ लाभ नहीं होता। परन्तु जोश और साहस तथा
उत्कंठा जितनी बढ़ती रहे उतना ही अच्छा है। अनुभवका स्वरूप
इसप्रकार है कि किसी अन्य पदार्थके जाननेमें आत्मा स्वयं अपना
बोध करता है कारण कि अन्य पदार्थका ज्ञान आत्माको स्वयं
आत्माकी ज्ञान चेतनाकी दशाओंके परिवर्तनोंद्वारा ही हो सक्ता
है और इस कारणसे कि आत्माको ज्ञानचेतनाके परिवर्तन
आत्मद्रव्यसे भिन्न कोई अस्तित्व नहीं रखते हैं। इसलिये इनका
अनुभव स्वयं अपने अनुभवहीके साथ सम्भव है दूसरे छद्मस्थ
अवस्थामें बिना ज्ञान चेतनाके परिवर्तनोंके पर पदार्थका बोध
नितांत असम्भव है। अब जो जीवको पर पदार्थके जाननेमें
अपना बोध होता है वह गौणरूपमें होता है मुख्यरूपमें नहीं।
इसलिये ऐसा विदित होता है कि जाननेवालेको दूसरे पदार्थका
तो बोध हुआ परन्तु अपना नहीं। यही दोष इस स्वात्म अनुभव
में है। इसी दोषको दूर करना है। जिससे स्वात्माका अनुभव
जो इस समय गौणरूपमें होता है मुख्य रूपमें होने लगे और पर
पदार्थका बोध गौणरूपमें रह जाय। स्वात्म अनुभवका मुख्य तात्पर्य
यह है कि स्वका अनुभव मुख्य हो और परका अनुभव गौण हो, यहां
दशा इसके विपरीत है। इसीको अँग्रेजीमें Putting the cart
before the horse (अर्थात् छकड़ेको घोड़ेके आगे लगाना) कहते
हैं। अतः जीवको केवल इतना ही काम करना है कि घोड़ेको उस

के योग्य स्थान पर लगावे अर्थात् जो वस्तु अब गौण है उसको मुख्य कर दे और मुख्यको गौण कर दे। अब आत्मा तो जहांका तहां है। उसको तो उठाकर किसी और स्थान पर नहीं धरा जा सक्ता। अर्थात् घोड़ा तो अपने स्थान पर है केवल छकड़ेको जिस स्थान पर वह अब है वहांसे हटाकर उसके योग्य स्थान पर खड़ा करना है। और इसमें ही सारी दिक्कत व कठिनाई है। क्योंकि यह छकड़ा तद्विरुद्ध इसके कि यह अचेतन और जड है जगत्प्रसिद्ध अड़ियल टट्टूसे भी अधिक अड़ियल है। इसका अपने स्थानसे हटाना बड़ा कठिन है। यह वह शत्रु है कि जो इससे लड़ने आता है उसका आधा बल तुरन्त हर लेता है और फिर उसको सुगमतासे कुचल डालता है। इसको मारनेके लिये भी बुद्धिमत्ताके पेड़की आड़ पकड़नी पड़ती है। क्योंकि यह केवल जीवात्माकी इच्छाओंका पुंज है जो विषय वासनाओं के रूपमें इंद्रियोंको लुभाता रहता है और इस कारणवश आत्माको गौण अवस्थामें डाल रखता है अतः इच्छाका निरोध पूरा पूरा हो तो शत्रु पर विजय प्राप्त हो। इसलिये राग व द्वेषको हृदयसे पृथक् करना है। क्रोध मान माया लोभको नष्ट करना है। मिथ्यात्वकी प्रबलता और इन बुरे कषायोंकी तीव्रतासे साधारणतया चार डिगरीका ज्वर प्रत्येक समय संसारी जीवको चढ़ा रहता है जिसके कारण धर्मोपदेश उसको बुरा मालूम होता है। जब मिथ्यात्व और कषायोंकी प्रबलतामें कुछ न्यूनता हो जाती है और ज्वर एक डिगरी उतर जाता है तो उस समय जीवको

सत्योपदेशमें रुचि उत्पन्न हो जाती है मगर उसपर अमल नहीं कर सक्ता है। इसके उपरांत जब एक डिगरी ज्वर और हलका हो जाता है तो वह एक देश चारित्रका पालन करता है और स्थूलरूपसे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदारसंतोष व परिग्रह त्यागके पंचव्रतोंका पालन करता है। फिर एक डिगरी ज्वर जब और उतर जाता है तो वह सन्यास आश्रमकी कठिनाइयों-को सहन करनेकेलिये उद्यत हो जाता है और साधुओंके कठिन व्रतोंको पालने लगता है। अन्तमें जब चारों दर्जेका ज्वर जाता रहता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है और सर्वज्ञताको प्राप्त करता है। अब वह केवल शरीरमें होनेके कारण संसारमें रहता है और जब आयुकर्मके पूर्ण होने पर शरीर पृथक् हो जाता है तो तुरन्त निर्वाणक्षेत्रमें विशुद्ध नूर (जीवद्रव्य)की छविको धारण किये हुये मुक्त जीवों अर्थात् परमात्माओंके स्थान पर विराजमान होता है। और नित्य परमानन्दका सुख भोगता है। यह आत्मिक ज्वर हलका कैसे हो? कठिनाई सारी प्रारम्भमें है जब रोगीको धर्मोपदेश ही कड़वा प्रतीत होता है। क्योंकि धर्मलाभ एक दफा होनेके पश्चात् तो फिर सब मामला सहल हो जाता है। फिर तो श्रद्धा अपना प्रभाव स्वतः दिखाती है और धीरे धीरे अवशेष तीन डिगरियोंका ज्वर नष्ट हो जाता है। परन्तु कठिनता प्रारम्भमें है जब जीव धर्मके नामसे भागता है। और पाखण्ड और हिंसामें निमग्न रहता हैं। ऐसे समयमें डाक्टर लोग धर्म उपदेश नहीं देते हैं। इससे तो उस-

को तुरन्त कै (अत्यन्त अरुचि) हो जाती है। और फिर वह हाथ धरने नहीं देता है। उस समयमें केवल एक ही औषधि है जो किसी विधिसे पिलानी चाहिये। और उस औषधिका नाम अहिंसा है। जब यह औषधि रोगीके पेटमें पहुंच जाती हैं तो इससे उसके ज्वरकी तेजी और विषमतामें कुछ कमताई हो जाती है और दया और रहमकी झलक उसके चेहरे पर आ जाती है। वस ! दयाका गुण हृदयमें उमड़ा मानो आत्मज्ञानका समय आया, क्योंकि दयाका भाव ही आत्मा अर्थात् जीवकी प्राणरक्षाका है। यही कारण है कि ऋषियोंने अहिंसाके विषयमें कहा है कि 'अहिंसा परमो धर्मः'। जहां और कोई औषधि सफल नहीं होती, जहां रोगी औषधिके नाम मात्रसे भागता है वहां यह अहिंसा अपना कर्तव्य दिखाती है और जो रोगी किसी अन्य दवाईसे अच्छा नहीं हो सक्ता उसको चंगा करती है। अस्तु, जो जीव अहिंसाके शुभ नियम पर अमल करते हैं वे ही मोक्षके अधिकारी होते हैं। अव इस वातको सुनो कि धर्मलाभ होनेपर इच्छाका निरोध कैसे हो? यह तो प्रत्यक्ष प्रगट है कि विना सीढीके छत पर चढ़नेकी कोशिशमें कष्ट और परेशानीके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सक्ता है, इसलिये यह आवश्यक है कि नियम और क्रमसे उसके नष्ट करनेका प्रयत्न किया जावे। यहांपर दो नियम याद रखना चाहिये। प्रथम तो सब प्रकारकी इच्छाओंको जीव एक दम नहीं छोड़ सक्ता है और दूसरे यह कि सबसे बुरी आदतों व इच्छाओंका त्याग सबसे पहिले

चाहिये। क्योंकि निःकृष्ट (दुष्टतम)की उपस्थितिमें नीच और नीचतर (दुष्टतर) छोड़नेसे क्या लाभ? निकृष्टमें तो नीच व नीचतर दोनों ही सम्मिलित हैं, इसलिये जब इन दोनों नियमों पर ध्यान दोगे तो यह ज्ञात हो जायगा कि (१) मांस (२) मदिरा (३) जुआ (४) चोरी (५) तमाशवीनी (६) शिकार (७) झूंठ बोलना यह सात बातें एकदम छोड़नी चाहिये। क्योंकि ये अन्य सब बुराइयोंकी जड़ हैं। इसके उपरान्त पंच-व्रत जिनका पूर्व वर्णन हो चुका है, पालने चाहिये। फिर धीरे २ अपने आपको संन्यासके कठिन मार्गके लिये तैयार करना चाहिये। इस कालमें गृहस्थीमें रहकर और विवाह करके उत्तम सज्जन पुरुषके तौर पर भोग विलास भी ठीक है। परन्तु चित्त की वृत्ति जहां तक बने उदासीन रूप रहे। और यदि सम्यक् दर्शनका लाभ हो गया है तो यह स्वयं उदासीन रूपमें परिवर्तित होने लगेगी। अंततः ४५–५५ वर्षकी अवस्थामें गृहस्थ संन्यास-के योग्य हो जायगा यदि उसकी होनहार शुभ है, नहीं तो आगामी जन्ममें पुण्यका फल भोगेगा और वहां संन्यास लेगा। संन्यासीके तौर पर अब उसका संसारसे केवल इतना ही संबंध रहता है कि वह शुद्ध भोजनके निमित्त उत्तम गृहस्थके यहां जाता है वा अपनी शक्तिके अनुसार धर्मोपदेश सज्जन पुरुषोंको देता है अवशेष सर्वकाल उसका प्रयत्न यही रहता है कि स्वात्म-अनुभव प्राप्त हो। यथार्थमें साधुका जीवन प्रारम्भमें बड़ा कष्ट-साध्य जीवन है। गृहस्थ तो पूरी २ उदासीनताको भी कठिनाई-

से प्राप्त होता है किन्तु साधुको उन सम्पूर्ण इच्छाओंको पूरा २ नष्ट करना है जो स्वात्म-अनुभवको नहीं होने देती हैं। वह रत्न त्रय मार्ग अर्थात् Right-Faith सत्य श्रद्धा अर्थात् सम्यक्दर्शन Right Knowledge सत्य अर्थात् सम्यक्ज्ञान और Right-Conduct सत्यमार्ग अर्थात् सम्यक्चारित्र पर सावधानीके साथ चलता है। और अपनी शक्तिके अनुसार नित्यप्रति उन्नति करता रहता है। इस रत्नत्रय मार्गका मुख्य कर्तव्य इस प्रकार है। सम्यग्दर्शनका कर्तव्य यह है कि दृष्टिको आनन्द व पूर्णताके बन्दरगाहकी ओर जहां जीवको पहुंचना वाञ्छनीय है बराबर लगाये रहे। और एक क्षणको भी उसको किसी दूसरी दिशा में न जाने दे। वह जहाजके पतवारके सदृश है क्योंकि जिधर पतवारका रुख होता है उधर ही जहाज चलता है। जिसके जीवनरूपी नौकाके पतवारका रुख अन्य स्थानकी ओर है उसका मोक्षस्थानको पहुंचनेकी आशा करना व्यर्थ है। सम्यक्ज्ञान वह जहाजरानीका नक्शा है जिससे मार्गका हाल ठीक २ मालूम होता है कि कहां चट्टान है और कहां दलदल और कहां अन्य प्रकारकी कठिनाइयां हैं। जिस मल्लाहके पास ऐसा नक्शा नहीं है उसकी नौका समुद्रके पार कैसे पहुंच सक्ती है? वह मार्गमें ही कहीं चट्टानोंसे टकराकर अटक जायगी। सम्यक्चारित्र तीसरा रत्न इस रत्नत्रय मार्गका है। इसकी आवश्यक्ता ठीक वैसी ही है जैसी जहाजको स्टीमकी आवश्यक्ता होती है। क्योंकि नौका जबतक चलेगी नहीं, उद्दिष्टस्थान बन्दरगाह तक

कभी नहीं पहुंचेगी। पतवार और मार्गका चित्र केवल क्या करेंगे। इसी प्रकार सम्यक्‌दर्शन और सम्यक्‌ज्ञान विना सम्यक्‌ चारित्रके कार्यहीन ही रहते हैं। तिसपर भी यह ठीक ही है कि सम्यक्‌दर्शनके प्राप्त होने पर चारित्र कभी न कभी ठीक हो ही जाता है क्योंकि जिसके मनमें यह बात निश्चित हो गई है कि उसको अमुक स्थान पर जानेसे अवश्य ही बड़ाभारी लाभ होगा वह एक न एक दिन उधरको चल ही पड़ेगा। दुविधावाला तो चाहे न जाय परन्तु दृढ़ निश्चयवाला विना जाये कभी न रहेगा। सम्यक्‌चारित्र वास्तवमें स्वात्मअनुभव ही है ऐसा पहिले कहा गया है। परन्तु इस स्वात्मअनुभवकी सिद्धिके लिये इसमें वाधक होने वाली आदतों, इच्छाओं और कषायोंका नष्ट करना है। साधुका वस यही काम है कि वह अपनी इच्छाओं आदतों और कषायोंको जड़ वुनियादसे नष्ट कर दे जिससे कि फिर कोई भी वाधक स्वात्मअनुभवमें न रहे। इसलिये वह न भूख प्यासकी परवा करता है, न कीड़े मकोड़ों व जानवरोंके काटने-की, और न वह शारीरिक आरामको ढूंढ़ता है, न क्रोध, मान, माया, लोभको अपने मनमें आने देता है। नियम और क्रम जो धर्मसे सम्वन्धित हैं उनकी वह सख्तीसे पावन्दी करता है। और अन्ततः कठोर तपस्या द्वारा वह अपने मन वचन और कायको अपना दास वना लेता है जिससे वह फिर उसके स्वात्म अनुभवमें विघ्न नहीं डाल सके। जो लोग concentration (चित्तके एकाग्र न होने)की शिकायत करते हैं उनको अव जान

लेना चाहिये कि क्यों उनका ध्यान स्थिर नहीं रहता है। ध्यान मनद्वारा होता है और मनकी यह अवस्था है कि जरासी पीड़ा कहीं शरीरमें हुई और तबीयत बेचैन हुई। ज़रा किसी मनको लुभानेवाली वस्तुका ख्याल आया ध्यान और मन बेक़ाबू होकर भागा। अतः यथार्थ concentrative (अचल ध्यान) केवल मन, वचन और कायके पूर्णतया वशमें हो जाने पर ही होता है। अब ध्यानके विषयमें सुनो। ध्यान चार प्रकारका होता है। एक वह जिसमें दिल हिंसाके कामोंमें लगा रहे और उसमें प्रसन्न हो। यह अत्यन्त बुरा है। इससे हृदयमें कठोरता उत्पन्न होती है और यह नरक और निकृष्ट दुर्गतिका कारण है। दूसरा वह ध्यान है जो विषय वासनाओंमें लगा रहे। वह इष्टवियोग अनिष्ट संयोगरूप है। यह भी बुरा है। और दुर्गतिका कारण है। तीसरे प्रकारका ध्यान आत्मविचार अर्थात् धर्मसम्बंधी बातोंका ध्यान है जैसे तत्त्वविचारादि। इस समय तुम्हारे मनकी प्रकृति धर्मध्यान रूप है। चौथे प्रकार-का ध्यान जो शुक्लध्यान कहलाता है स्वात्मध्यान व योग समाधि है जो अन्तमें बढ़ते २ शुद्ध स्वात्म अनुभव व निर्विकल्प समाधि का स्वरूप धारण कर लेता है। निर्विकल्प समाधिका स्वरूप यह है कि आत्मा स्वयं बिना मन, वचन व कायकी सहायताके साक्षात् अपनी सत्ताका अनुभव निर्विघ्नरूपसे करे। यही ध्यान परम शुक्लध्यान है जो मुक्त (शरीररहित) व जीवन्मुक्त (मुक्ति निकट पहुंचनेवाले शरीरसहित) परमात्माओंके होता है।

रण साधुके कभी मन कभी वचन कभी काय योगसे स्वात्म-अनुभव होता है। मन वचन काय ध्यानके योग कहलाते हैं और साधारण साधुके ध्यानमें यह थोड़ी देरतक ही स्थिर रह सके हैं। इसके उपरांत वदल जाते हैं। परन्तु जव साधु उन्नति करके ऊपरके दर्जोंमें पहुंच जाता है उस समय इन योगोंमेंसे एक ही योगका सहारा लेकर उसका ध्यान ठहर जाता है। गृहस्थके लिये स्वात्मअनुभव करीव २ असम्भव है। उसका मुख्य ध्यान धर्मध्यान है जिसमें उसको जितना संभव हो अपने मनको लगाये रहना चाहिये। परन्तु उसके लिये भी यह उचित है कि दिनमें कमसे कम एक दफ़े सवेरेको और हो सके तो दो दफ़े वा तीन दफ़े अर्थात् सवेरे, दोपहर, शामको एकांत स्थानमें वैठकर मन-को स्वात्मअनुभवमें लगावे। नियम वही है जो साधुका है। अर्थात् या तो शरीरके चक्रोंमेंसे किसी पर अपने ध्यानको स्थिर करके आत्माके अस्तित्वको अनुभव करे वा मनमें शुद्ध पूर्ण पर-मात्माके स्वरूपको स्थिर करे और विचारे, कि मैं यहीं हूं वा शब्दों द्वारा अपनी आत्माके स्वरूपका अनुभव करे। एक सुगम उपाय इस स्वात्मअनुभवका यह है कि आसन लगाकर वैठ जाय वा खड़ा हो जावे और अपने शरीरमें अपने आत्मदेव-को निर्मल सफेद नूरकी भांति वा दिव्य प्रकाशके सदृश भान करे। इसमें वड़ा आनन्द मिलता है। शब्दोंद्वारा स्वात्मअनुभव भी वड़ा आनन्दायक है। अपनेही आत्माके पूज्य स्वाभाविक गुणोंका वर्णन करना है जिससे उसकी परमात्मापनकी शक्ति

जागृत हो। जितना समय इस स्वात्मअनुभवमें दिया जावे उतनाही थोड़ा है। क्योंकि आत्मामें यह भी गुण है कि जिस बात को वह निश्चयपूर्वक मान लेता है वैसा ही हो जाता है। अतः यदि इस आत्माको इस बातका दृढ विश्वास हो जावे कि मैं ही परमात्मा हूं तो यह शीघ्र ही अपनी इच्छाओं और बन्धनोंको नष्ट कर डाले और स्वयं परमात्मा हो जावे। तात्पर्य यह है कि धर्म आत्मिक विज्ञान है जिसकी शिक्षा यह है कि:—

(१) जीवात्मा ही स्वभावसे परमात्मस्वरूप है।

(२) अमुक्त दशामें जीवात्मा अपने स्वाभाविक गुणोंसे अनभिज्ञ होता है और इस कारण परमात्मपदको प्राप्त नहीं होता है।

(३) स्वात्मअनुभव द्वारा जीवात्मा मोक्ष और परमात्मपदको प्राप्त कर सक्ता है।

(४) स्वात्मअनुभवके लिये तपस्या आवश्यकीय है।

(५) तपस्याका भाव इच्छाओं और वाञ्छाओंका सर्वथा नष्ट करना है अर्थात इन्द्रियनिग्रह और विषय भोगोंसे मुंह मोड़ना है।



दूसरा परिच्छेद ।

"भारतवर्षीय धर्म"

मैंने कहा:—माताजी ! आपके मुखारविन्दसे धर्मका स्वरूप मैंने सुना और धर्मामृतसे मेरे भीतरी अंधकारका नाश हुआ और मेरे आत्मिक संतापकी शान्ति हुई । परन्तु मैं उसके श्रवणसे एक प्रकारके चक्करमें पड़ गया हूँ कारण कि यह धर्म शिक्षा जो इस समय मैंने सुनी है इसका वर्णन कहीं पर मेरे देखनेमें नहीं आया और न पवित्र वेदमें ही पाया जाता है । कृपया मेरे इस भ्रमको दूर कर दीजिये ।

माताका उत्तर:—जो धर्मका स्वरूप कि आज तुझको बताया गया है यही वास्तविक धर्म है । यही सब धर्मोंमें किसी न किसी रूपमें पाया जाता है । संसारके धर्मोंमें जैनधर्म और हिन्दूधर्म दोनों सबसे प्राचीन हैं । इन दोनोंकी भी यही शिक्षा है । वास्तवमें वेद संस्कृत भाषामें नहीं लिखे हुये हैं । तूने यह समझ कर कि वेद संस्कृत भाषामें ही लिखे हुये हैं उनको पढ़ा । इसलिये उनका वास्तविक रहस्य तुझको विदित नहीं हुआ । वास्तवमें वेद दो भाषाओंमें लिखे हुये हैं एकमें नहीं । ऊपरी भाषा संस्कृत है परन्तु असली भीतरी भाषा काव्य अलङ्कार स्वरूप है । संस्कृतके पढ़नेसे तो केवल अलङ्कारोंका वर्ण मालूम हो जाता है । उनके भाव समझे तो वास्तविक धर्मक

पता लगे। सब वेदोंमें प्राचीन ऋग्वेद है मगर स्थूल दृष्टिसे पाठ करनेवालोंको उसमें कर्म आवागमन व आत्मस्वरूप जैसी बातों का भी पता नहीं चलता। परन्तु यह सत्य है कि ये सब बातें उसमें मौजूद हैं। क्या यह बात तेरी समझमें नहीं आई?

मैंने कहा:—माताजी! आपका कथन सर्वथा सत्य है परंतु मुझ जैसे मूर्खोंके समझमें आपका उपदेश सहजमें ही कैसे आवे? मुझे तो ऋग्वेदमें देवीदेवताओंकी स्तुतियां ही मिलती हैं। इनके अतिरिक्त मैंने वेदमें और कुछ नहीं पाया। न अलङ्कार ही देखे और न कहीं आवागमन, कर्म, आत्मा इत्यादिका वर्णन ही पाया। तथा अब कृपा करके मेरे ज्ञान चक्षुओंको खोल दीजिये और मुझे बताइये कि यह क्या भेद है कि मुझे सत्यधर्मका स्वरूप जो आज आपने समझाया, वेदोंमें नहीं मिला। और कृपया अलङ्कारकी भाषाका बोध भी मुझे करा दीजिये। और इस विषयको दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट रीतिसे समझाइये ताकि मेरी तुच्छ बुद्धिमें यह भेद भलीप्रकार आ जावे।

माताने उत्तर दिया:—पुत्र! वेद भाषा बड़ी उत्तम शैलीकी काव्य रचना है। संस्कृतमें उससे उत्तम अलङ्कार कम मिलेंगे। धर्मशास्त्रके पूज्य नियमोंको ही देवी देवताओंके रूपमें वर्णन किया गया है। वर्तमान समयके मनुष्य बड़े सङ्कुचित विचारवाले होते हैं। बुद्धिमत्ताकी अपेक्षा इनको शूद्र कहना अनुचित नहीं होगा। ऐसे लोगोंको वास्तवमें वेदोंका पठन पाठन मना है कि यह कहीं उलटा सुलटा अर्थ न लगा लेवें। वेद

बुद्धिगम्य ही हैं परंतु जब उनका अर्थ गलत लगाओगे तो वेदोंका दोष कुछ नहीं है। इसलिये पिछले समयमें विद्याओंमें काव्य अलङ्कार निरुक्त आदि पर अधिक ज़ोर दिया जाता था। कारण यही है कि जो व्यक्ति कि काव्यरचना निरुक्त व अलङ्कारकी विद्यासे अनभिज्ञ है वह कभी वेदके वास्तविक भावको नहीं समझ सक्ता। वर्तमानकालमें लोग वेद भाषाको शब्दार्थमें पढ़ते हैं। इसप्रकार तो यदि शूद्र भी संस्कृत भाषा सीख ले तो पढ़ सकेगा। तो फिर ब्राह्मण (बुद्धिमान) हीको पढ़नेकी आज्ञा क्यों दी जाती। अस्तु; यथार्थ बात यह है कि वेद काव्य अलङ्कारयुक्त हैं और उनका अर्थ केवल ब्राह्मण (पण्डित) गण ही जान सक्ते हैं, शूद्र (तुच्छ बुद्धिके मनुष्य) नहीं। अब देख ! मैं तुझे वैदिक धर्मका असलीभाव समझाती हूं। इसको ध्यान देकर सुन ! इससे तेरा कल्याण होगा।

यह तुझे बताया जा चुका है कि सत्य धार्मिक विज्ञानके अनुसार (१) आत्मा एक द्रव्य है जो सर्वज्ञताकी योग्यता रखता है अर्थात् वह सर्वज्ञ होता यदि वह उस अपवित्रताके मैलसे जो उसके साथ लगा हुआ है पृथक् होता। (२) अपवित्र आत्मा इन्द्रियों द्वारा बाह्य संसारसे व्यापारमें संलग्न है और आवागमनमें चक्कर खाता है। (३) तपस्या और इन्द्रियनिग्रह, परमात्मापन और पूर्णताकी प्राप्तिके साधन हैं। दूसरे शब्दोंमें प्रत्येक आत्मामें परमात्मा हो जानेकी योग्यता विद्यमान है परन्तु वह जब तक पुद्गलमें लिप्त है तब तक वह संसारी जीव

(अपवित्र अवस्थामें) ही रहता है और तपस्या द्वारा पुद्गलसे निष्कृति पा सक्ता है। अतः तीन वातें जो मोक्षके अभिलाषीको जाननी आवश्यक हैं वह यह हैं:—

(१) शुद्ध जीवद्रव्यका स्वरूप।

(२) जीवात्मा (अपवित्रात्मा)-की दशा। और

(३) अपवित्रताके हटानेके उपाय।

यही तीनों वातें वह विषय हैं जो वैदिक देवालयमें तीन वड़े देवताओं सूर्य्य, इन्द्र, और अग्निके रूपमें पेश किये गये हैं।

(१) सूर्य्य सर्वज्ञताका सूचक (चिन्ह) है क्योंकि जिस प्रकार सूर्य्यके गगनमें उदय होनेसे सब पदार्थ दिखाई पड़ते हैं इसी प्रकार जब सर्वज्ञताका गुण जीवमें प्रादुर्भूत हो जाता है तो वह सब पदार्थोंको प्रकाशमान कर देता है।

(२) इन्द्रका भाव सांसारिक अपवित्र जीवसे है, जो इन्द्रियोंके द्वारा सांसारिक भागोंमें संलग्न होता है।

(३) अनल तपस्याकी मूर्ति है जो मोक्षका कारण है।

व्यौरेके साथ, इन्द्रने

(१) गौतमकी पत्नीसे जार कर्म किया।

(२) जिसके कारण उसके शरीरमें फोड़े फुनसियां फूट निकलीं।

(३) यह फोड़े फुनसियां ब्रह्माजीकी कृपासे चक्षु बन गये।

(४) इनके अतिरिक्त इन्द्र अपने पिताका भी पिता है।

इन वातोंकी विधि—मिलान निम्नप्रकार है—

(१) (क) जारकर्मका भाव जीवका प्रकृति-समागम अर्थात् पुद्गलमें प्रवेश करना है, जो मोक्षके इच्छुक पुरुषोंके लिये अयोग्य (वर्जित) कर्म है। क्योंकि मोक्षका भाव ही प्रकृतिसंयोग से वियोगका है।

(ख) जीवन और बुद्धि जीवके दो गुण हैं जिनमेंसे जीवन सदैव स्थित रहता है बुद्धि समय समय पर प्रत्यक्ष और विलीन होती रहती है जैसे नींदमें उसका विलीन हो जाना।

(ग) जीवनकेलिये शिक्षाका द्वार बुद्धि है चूंकि बाह्य पुस्तकें व गुरु तो ज्ञानप्राप्तिके सहकारी कारण ही होते हैं, असली कारण नहीं।

(घ) बुद्धि सामान्यतः प्रकृतिसे संबन्ध रखती है और बहुत कम आत्माकी ओर आकर्षित होती है। उदाहरणरूप पाश्चात्य बुद्धिमत्ताको देख कि जिसको अभी तक आत्माका पता ही नहीं लगा है। इसलिये जीव और प्रकृतिके समागमको काव्यरचनामें इन्द्र (जीवात्मा)का गुरु गौतम (बुद्धि)की पत्नी (पुद्गल = प्रकृति)से भोग करना बांधा गया है।

(२) फोड़े फुन्सियां अज्ञानी जीव हैं जो प्रकृतिमें लिप्त होनेके कारण अपने वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं। यह अज्ञा-नताके कारण प्रथम अंधे हैं।

(३) परन्तु जब उनको ब्रह्मज्ञान, अर्थात् इस बातका ज्ञान कि आत्मा ही ब्रह्म है, हो जाता है, तो ऐसा होता है मानो उनकी आंखें खुल गईं। इसी बातको अलंकारकी भाषामें इस

तरह पर दिखाया है कि ब्रह्माजीने प्रार्थना पर कृपालु हो कर पापके चिन्ह फोड़े फुन्सियोंको आंखोंमें परिवर्तित कर दिया।

(४) अन्तमें इन्द्र अपने पिताके भी पिता हैं क्योंकि—

(क) शब्द पिताका अर्थ अलंकारिक भाषामें उपादान कारण हैं। और क्योंकि—

(ख) शुद्ध जीवका उपादान कारण अशुद्ध जीव है जब कि अशुद्ध (अपवित्र) जीव स्वयम् प्रकृति और जीवद्रव्यसे बना है। इसलिये एक दूसरेका उपादान कारण (पिता) है।

यह संक्षेपतः इन्द्र और उसके अपवादरूप जार कर्मका भाव है। इस देवताका शत्रु अन्धकारका असुर है जिसका भाव अज्ञानता है। और वर्षा जो इन्द्रद्वारा होती है वह उस शांतिकी वृष्टि है जो कषायों और मिथ्यात्वके तपनके दूर होनेपर होती है।

महान देवताओंकी त्रिमूर्तिमें तीसरा देव अग्नि है जो तपस्याकी मूर्ति है। तपका संबन्ध यहांपर स्वयं प्रगट है। अग्नि शब्द ही तपस्याके भावको उद्दीपन करनेके लिये बहुत उचित है। क्योंकि तपस्याका अर्थ वास्तवमें वैराग्यकी अग्निसे जीवको पवित्र करना है। अग्निके विशेष चिन्ह निम्न भांति हैं:—

१—उसके तीन पैर हैं, व

२—सात हाथ, और

३—सात जिह्वाएं हैं।

४—वह देवताओंका पुरोहित है जो उसके बुलानेसे आते हैं।

५—वह भक्ष्य और अभक्ष्य अर्थात् पवित्र और अपवित्र दोनोंको खा जाता है और

६—वह देवताओंको बल देता है। अर्थात् जितना अधिक बलिदान अग्निको भेंट किया जाय उतनी ही देवताओंकी पुष्टि होती है।

इन अत्यन्त सुन्दर विचारोंकी विवेचना निम्न भांति है:—

१—तप तीन प्रकारसे होता है-अर्थात्—

(क) मनको वशमें लाना

(ख) शरीरको वशमें लाना,

(ग) वचनको वशमें लाना।

यदि इनमेंसे केवल दोको ही वशमें लाया जावे तो तप अधूरा रहेगा। और कोई चतुर्थ वस्तु वशमें लानेको नहीं है। अब चूंकि तपस्याके यह तीन आधार हैं इसलिये उसके तीन पग कहे गये हैं।

२—सात हाथोंका भाव ७ ऋद्धियोंसे है। जो तपस्वियोंको प्राप्त हो जाती हैं। मेरुदण्डमें जो ७ योगके चक्र हैं उनमें हरएकमें एक प्रकारकी ऋद्धि (शक्ति) गुप्तरीतिसे सुषुप्त मानी गई है। तपस्याचरणसे यह शक्तियां जागृत हो जाती हैं। चूंकि शक्तिका प्रयोग हस्तके द्वारा होता है इसलिये इन सात शक्तियोंको अग्निके सात ७ हस्त माना है।

३—सात जिह्वा अग्निकी पांच इन्द्रियां, मन और बुद्धि हैं जिनको तपकी अग्निमें स्वाहा या भस्म करना है।

४—चूंकि तपस्या करनेसे आत्माके ईश्वरीय गुण प्रकाशित होते हैं इसलिये अग्निको देवताओं (=ईश्वरीय गुणों)का पुरोहित कहा गया है जो उसके आह्वानसे आते हैं।

५—पुण्य और पाप दोनों बन्धन अर्थात् आवागमनके कारण हैं जिनमेंसे पुण्यसे हृदयग्राही और पापसे अरुचिकर योनियां मिलती हैं। इन दोनोंको मुमुक्षुको शुद्ध आत्मध्यान (समाधि)के लिये छोड़ना पड़ता है। इसलिये अग्निको पवित्र (पुण्य) और अपवित्र (पाप) दोनोंका भक्षण करनेवाला कहा है।

६—अग्निका भोजन इच्छायें है अर्थात् मनको मारना है क्योंकि तपस्यासे भाव इच्छाओंके त्यागसे है। इच्छाओंके नाश करनेसे आत्माके ईश्वरीय गुण और विशेषण प्रगट और पुष्ट होते हैं। अलंकारकी भाषामें इन ईश्वरीय गुणोंको देवता कहते हैं। इसलिये अग्नि पर (इच्छाओंका) बलिदान चढ़ानेसे देवताओंकी पुष्टि होती है।

अंततः वैदिक देवालयकी रचना (तरतीब) से स्पष्टतया निम्नलिखित भाव प्रगट होते हैं:—

१—हर व्यक्ति अपनी सत्तामें ईश्वर है अर्थात् जीवात्मा ही परमात्मा है।

२—शुद्धात्मा पूर्ण परमात्मा होता है क्योंकि वह सर्वज्ञतासे जो परमात्मापनका चिह्न है, विशिष्ट होता है।

३—जीवका परमात्मापन उसके प्रकृति (पुद्गल)से संयुक्त होनेके कारण दबा हुआ है।

४—तपस्या वह मार्ग है जो पूर्णता और परमात्मापनको पहुंचाता है।

इस प्रकार वेदोंके देवी देवताओंकी कथाओंमें जीवन विज्ञान-के कतिपय वलिष्ठ नियमोंको ही अलंकारकी भाषामें प्रस्तुत किया गया है।

मैंने कर जोडकर कहा—माता ! आपकी वाणीने आज मेरे हृदयके अन्धकारको नष्ट करके उसके स्थानमें ज्ञानका प्रकाश भर दिया। अव मैं यह वात भली प्रकार समझ गया कि वेद-मंत्रोंका वास्तविक भाव निरुक्त अलंकारादि वेद अंगोंको जाने विना, समझमें नहीं आ सक्ता है। परन्तु क्या ही उत्तम लेखन-शैली है कि थोड़ेमें ही सव कुछ कह दिया है। वास्तवमें सागर को वूंदके अन्तर्गत करना इसीको कहते हैं। धन्य है उस काव्य रचनाको जिसमें यह विशेषता पाई जावे। धन्य है उस ज्ञानको जो मोक्षका सच्चा दाता है। यथार्थमें अपनी आत्माके अतिरिक्त मोक्ष कहांसे मिल सक्ती है। मोक्ष तो स्वयं अपना स्वरूप ही है, वाहरसे कोई कैसे दे सक्ता है। माता आपको धन्य है कि आपने क्षणमात्रमें मेरी अज्ञानताको दूर कर दिया और मुझे मोक्षका पात्र वना दिया। अव मेरा संसार निकट आ गया। और अव मैं आपके मुखारविन्दसे अग्निके स्वरूपको सुन कर यह भी अच्छी तरहसे समझ गया कि केवल अग्निकी पूजा क्यों की जाती है। फेरोंके समय भी अग्नि देवताकी पुजाका यही अर्थ है कि दूल्हा दुलहन तपको साक्षी वनाते हैं और यही उनका प्रण

होता है कि सांसारिक विषय सेवनके समय भी यह बात सदा ध्यानमें रक्खेंगे कि तप ही जीवनका उद्देश है, और उसके नियमों को किसी प्रकार भंग न होने देंगे। माता आपको धन्य है कि आपकी कृपाद्वारा मैं सहजमें ही ये सब भेद समझ गया। अब मेरी अभिलाषा गणेशजीका स्वरूप जाननेकी है जिनकी पूजा हिन्दुओंमें और सब देवताओंसे पहिले, कार्यके प्रारम्भमें होती है।

माताजीने कहाः—तेरी बुद्धि तीव्र है। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। सुन! गणेशजीका स्वरूप इस प्रकार है:—

१—वह चूहे पर सवार होता है।

२—उसके शरीरमें मानुषिक देहमें हस्तीकी सूंड जुड़ी हुई है।

३—वह देवताओंमें सबसे छोटा है।

४—परन्तु जब उसका आदर कार्यके प्रारम्भमें न किया जाये तो सबसे अधिक खोटा है।

५—वह लड्डू खाता है।

६—उसका नाम एकदंत है क्योंकि उसकी सूंडमें दो दांतों के स्थान पर एक ही दांत है।

इस बालक देवताका पता इस कालमें किसी जिज्ञासुको नहीं लगा, परन्तु भाव धार्मिक बुद्धि या समझ है जैसा कि निम्न सदृशताओंसे प्रगट है।

१—चूहा जो सब पदार्थोंके काट डालनेके कारण अधिक

विख्यात है उस ज्ञानका चिन्ह है जिसको एनेलिसिस (Analysis = सत्यविकासविद्या) कहते हैं।

२—गणेश जिसका शरीर मानुषिक देह और हाथीकी सूंड से जुड़कर बना है स्वयं संयोग आत्मिक (Synthesis) ज्ञानकी मूर्ति है।

३—सत्य वैज्ञानिक बुद्धि देवताओं (दैविकगुणों)में सबसे कम उमरवाला (बच्चा) है क्योंकि वह आवागमनके चक्रमें सदैवसे घूमने वाले आत्माको जब वह मोक्ष पानेके निकट होता है तब ही प्राप्त होता है।

४—यद्यपि धार्मिक बुद्धि देवताओंमें सबसे छोटी है वह इस बात पर हठ करती है कि कार्यारम्भ पर उसका पूजन किया जावे। क्योंकि विचारपूर्वक कार्य सम्पादन न करनेसे अवश्य नाश होता है।

५—लड्डूका भाव बुद्धिके फल परमानन्दसे है क्योंकि बुद्धिमान पुरुष स्वाभाविक रीतिसे परम सुख (मिठाई)को भोगते हैं,

६—एकदंतका संकेत अद्वैतवादके नियम 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' की ओर है। अर्थ यही है कि हर जीवके लिये स्वयं उसकी आत्मा ही वास्तवमें अकेला परमात्मा है।

यह हृदयग्राही मूर्ति गणेशजीकी है।

मैंने कहाः—माताजी! आपने बड़ी कृपा की कि आपने गणेशजीके अद्भुत भावको मुझ पर प्रगट किया। आपकी

शिक्षा द्वारा कुल देवताओंका पता स्वयं सहजमें ही चल जाता है। और उनके स्वरूपके समझनेमें अव कुछ कठिनाई मुझे नहीं पडेगी। परन्तु अव कृपा करके यह वताइये कि इस भारत देशमें सत्य विज्ञानके होते हुये भी मतभेद क्यों पड़ गये? और दर्शनोंमें पारस्परिक विरोध क्यों पाया जाता है? ताकि मेरे हृदयको शांति हो।

माताका उत्तरः—यह प्रश्न वडा विवादास्पद है। इसके समझनेमें वडे २ बुद्धिमान चक्करमें पड़कर उलझ गये हैं। इसका समाधान इस प्रकार है। दुनियांमें प्राचीन दो ही धर्म अर्थात् जैनधर्म और वेदोंका धर्म है। शेष सव धर्म इन दोनोंके पश्चात् के हैं। इस वातको वर्तमानकालके सव बुद्धिमानोंने भी मान लिया है। वेदोंमें ऋगूवेद ही सवसे प्राचीन है। जैनमत और वेदोंके मतका ठीक सम्बन्ध वही है जो विज्ञान और अलंकारका हुआ करता है। वास्तवमें सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेसे इनमें कोई भेद नहीं है। स्थूलदृष्टिवालेको जो वेदके मन्त्रोंके यथार्थ भावसे अनभिज्ञ हैं भेद दीख पड़ता है। षट् दर्शनोंमेंसे कोई भी अधिक प्राचीन नहीं हैं। दर्शनोंके पारस्परिक विरोध दार्शनिकोंकी वुद्धियोंके कारणसे हैं। वौद्धमत अनुमानतः ढाई हजार वर्ष हुये भारतवर्षमें स्थापित हुआ था। परन्तु शून्यवादकी नींव पर निर्धारित होनेके कारण वह इस देशमें जड़ नहीं पकड सका तिस पर भी एक समय यह सारे देशमें इस कारणसे फैल गया था कि इसमें तपकी कठिनाई कुछ हलकी कर दी गई है। बुद्ध-

मतके पश्चात् बहुतसे मतमतांतर समय समय पर चलते रहे और जैसा जिसकी समझमें आया वैसा उसने अपने लिये मत बना लिया परन्तु धर्मका असली स्वरूप वही है जो तुझको बताया गया है।

तीसरा परिच्छेद।

"अन्यप्रचलित मत"

मैंने कहा—हे माता ! मैंने आपके कथनद्वारा वेदकी व्यवहरित तथा अलंकृत भाषाको समझ लिया। अब मुझे कोई संदेह इस विषयमें बाकी नहीं रहा। परन्तु अब कृपया यहूदियों के मतके रहस्यको मुझपर प्रगट कीजिये। आपके मुखारविन्दसे इसके सुननेकी इच्छा है।

माताने कहा:—यहूदियोंके मतका रहस्य एक कहानी द्वारा ही विदित होसक्ता है, जो इस भांति है। आदम और हव्वाको ईश्वरने अदमके बागमें, जिसको ईश्वरने बनाया था रक्खा। इस बागमें अनेक वृक्ष हैं परंतु बागके बीचमें दो वृक्ष हैं। जिसमेंसे एक नेकी और बदीके ज्ञानके फलका वृक्ष है और दूसरा जीवनका वृक्ष। यहां मनुष्य (आदम)ने ईश्वरी आज्ञाकी अवज्ञा की। और सांप (शैतान) के बहकानेपर पहिले प्रकार अर्थात् नेकी और बदीके ज्ञानके वृक्षका फल खाया। जिसका

परिणाम यह हुआ कि वह अपने साथी हव्वा समेत जो इस पापमें सम्मिलित थी और पश्चातमें उसको स्त्री हुई, वागसे निकाल दिया गया। इस अवज्ञाके फलस्वरूप मृत्युने भी आदम को आन घेरा। आदमके पहिले दो पुत्र हाबिल और कायन हुये इनमेंसे कायनने अपने भाईको मार डाला। इस कारण ईश्वर (जेहुआ) ने कायनको श्राप दिया और वह पृथ्वी पर कार्य-हीन फिरने लगा। इसके पश्चात आदमके एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम उसने सेत रक्खा। सेतका एक पुत्र एनोस हुआ। उसके समयसे लोग जेहुआ (ईश्वर)का नाम लेने लगे अपने आपको जेहुआके नामसे कहने लगे। यह रहस्यपूर्ण कथानक यहूदी मतके भावको पूर्ण करनेको यथेष्ट है। इस कथाका भावार्थ इस भांति है:—

१—वाग अदन जीवके गुणोंका अलङ्कार है। अर्थात् इसमें जीवको वाग और गुणोंको पेड़ोंसे संकेतित किया गया है।

२—पेड़ोंमें जीवन और नेकी व वदीके वोधके दो पेड़ मुख्य हैं। अतएव वह वागके मध्यमें पाये जाते हैं।

३—आदमसे भाव उस जीवसे है जिसने मनुष्यकी योनि पाई है अर्थात् जो मानुषिक योनिमें है।

४—हव्वासे भाव बुद्धिका है जो आदमके सोनेके समय आदमकी पसलीकी बनाई गई है यह एक युक्ति-युक्त अलंकार है क्योंकि अंततः बुद्धि तो जीवका ही गुण है। जिसको नींदसे जागनेपर मनुष्य अपने पास पाता है।

५—सब प्राणियोंमें केवल मनुष्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है और इसलिये धार्मिक शिक्षाका वही अधिकारी है पशुओंको बुद्धिकी कमी और शारीरिक तथा मानसिक न्यूनतायें मोक्षमें बाधक होती हैं। स्वर्ग और नरकके निवासी भी तपस्यासे वंचित रहनेके कारण मोक्ष नहीं प्राप्त कर सके हैं। अतः मनुष्य ही केवल धार्मिक शिक्षाका अधिकारी है।

६—जीवन वृत्तका भाव जीवनसे है और नेकी व बदीके ज्ञानका अर्थ संसारकी वस्तुओंका भोगरूपी मूल परिणाम है।

७—पुण्य पापके ज्ञानका फल (परिणाम) राग व द्वेष है। क्योंकि मनुष्य उस वस्तुकी प्राप्ति और रक्षाका प्रयत्न करता है जिसको वह अच्छा समझता है और उसके नाशका प्रयत्न करता है जिसको वह बुरा समझता है। अब यदि तुम नेकी और बदीकी वास्तविकता पर विचार करो तो तुमको ज्ञान होगा कि वह वास्तवमें कोई नैसर्गिक पदार्थ नहीं है और न सदैव एक अवस्थामें स्थिर रहनेवाली वस्तु है। वह तो केवल परस्पर संबंधित शब्द हैं। जैसे वृद्ध पुत्रहीन धनवान घरमें पुत्र उत्पन्न होनेका हर्ष मनाता है किन्तु वह निकटस्थ दायाद (भागीदार) जो उस धनवानके संतानहीन मृत्यु होने की बाट जोहता था, उस पुत्रके कारण दुःखमें डूब जाता

है। तो भी बच्चा जिसके कारण एक व्यक्तिको हर्ष और दूसरेको दुःख होता है अपनी सत्तामें केवल एक घटना है वह अपने माता पिताके लिये कल्याण और हर्षका दाता है और इसलिये नेक है। परन्तु उसके लिये जो उस बूढ़ेकी मृत्यु पर उसका धन लेनेके लिये इच्छुक बैठा था, दुख और हताशताका कारण हो जाता है। एकके हृदयमें वह प्रेम और रागको उत्पन्न करता है और दूसरेके दिलमें रञ्ज और द्वेषको। इसप्रकार राग और द्वेष नेकी और बदीरूपी ज्ञानके वृक्षके फल हैं।

८—राग और द्वेष इच्छाके दो साधारण विभाग हैं (रोचक वस्तुको अपनानेकी इच्छा = राग और बुरी वस्तुको नष्ट करनेकी इच्छा = द्वेष)। इच्छा ही कर्मबन्धन और आवागमनका कारण है जैसा कि पहिले दर्शाया गया है।

९—जीव इस कारण कि वह एक असंयुक्त (अखण्ड) द्रव्य है अविनाशी है। परन्तु शरीरधारी होनेके कारण जीवन और मृत्यु उसके साथ लगे हुये हैं। इस कारण इञ्जीलमें आया है कि "जिस दिन तू उसका फल खावेगा तू निस्संदेह मर जायेगा।"

यह स्मरण रखना चाहिये कि आदम उसी दिन नहीं मर गया जिस दिन उसने नेकी और बदीका ज्ञानरूपी फल खाया किन्तु उसके पश्चात् बहुत वर्षों तक जीवित

रहा और ६३० वर्षका होकर मरा। अतः "जिस दिन तू उसका फल खावेगा तू निस्संदेह मर जायगा"— इसका असली भाव यही हो सक्ता है कि वर्जित फल-के खानेसे मनुष्यको मृत्यु पराजित कर लेती है।

१०—सांपका भाव इच्छासे है, जिसके द्वारा बुरी प्रवृत्ति हुई। यह जीवको धर्मसे हटाकर बुरे कामोंकी ओर खींच लेती है।

अर्थात् राग द्वेष आवागमनके कारण हैं।

११—विषयोंके इष्ट व अनिष्ट (नेक व बद) के ढूंढ़नेमें संलग्न प्राणी आत्मासे अनभिज्ञ होता है। अर्थात् वह इस बातसे विज्ञ नहीं होता है कि जीव स्वयं परमात्मा है। और वह बाह्य देवताओंसे भय खा कर छिपता फिरता है।

१२—आदम पापका भार अपनी समझ (हववा) पर डालता है और हववा (समझ या बुद्धि) कहती है कि वह इच्छा-ओंके बहकानेसे गुमराह और पराजित हुई। यह बातें ज्ञान (Wit) बुद्धि और इच्छाकी आन्तरिक अस-लियतसे नितांत विधि मिलान रखती हैं क्योंकि पथ-प्रदर्शक (शिक्षक) बुद्धि है और बुद्धि इच्छाके वशी-भूत है अतएव इस बातके निर्णयका अधिकार कि बुद्धि किस बातके लिये अपने कर्तव्यमें संलग्न हो, स्वयम् बुद्धिको प्राप्त नहीं है प्रत्युत प्राणीकी इच्छाओं पर निर्भर

है। और उसकी वलिष्ठ इच्छाओंके अनुसार निर्णय होता है। बुद्धि तो जीवके पथको प्रकाशमान करनेके लिये एक प्रकारकी लालटेन है। यह बात कि यह हमको देवमन्दिरकी ओर ले जावे अथवा जुयेखानेकी ओर, हमारी इच्छाओं पर निर्भर है, न कि स्वयं बुद्धिकी इच्छा पर।

१३—पतनके पश्चात् हाविल और कायन आदमके संतान उत्पन्न होते हैं जिनमेंसे हाविल भेड़ोंका चरवाहा और कायन पृथ्वीका जोतने वाला है। यह दोनों अपने २ उद्योगोंकी भेंट ईश्वरके सामने लाते हैं परन्तु हाविलकी भेंट स्वीकार होती है और कायनकी नहीं। कायन इसपर हाविलको मार डालता है जिस पर खुदा उसे श्राप देता है। फिर सेत (=नियुक्त) आदमका पुत्र उत्पन्न होता है और सेतका पुत्र एनूस है जिसके समय में "मनुष्य अपने तई परमात्माके नामसे कहने लगा"

१४—इनमें हाविल अंधविश्वास है जिसकी दृष्टि आत्माकी ओर है परन्तु कायन तर्क वितर्ककी शक्ति है जो पुद्गलसे विवाहित है। इसलिये हाविल भेडों (जीवका चिन्ह) का रखवारा है और कायन भूमि (पुद्गल) का जोतने वाला है। भ्राताओंकी भेंटका भाव उनके निजी उद्योगोंका फल (परिणाम) है जिनमें हाविलका उद्यम जीवनके विभागका उत्तमोत्तम परिणाम अर्थात् भेड़का

सा नम्रभाव (उत्तम मार्दव) इत्यादि हैं और कायन की भेंट केवल पुद्गल ज्ञानका उत्तमोत्तम फल अर्थात् विजलीकी रोशनी पेरोप्लेन इत्यादि हैं।

हाबिलका कर्तव्य स्वाभाविक रीतिसे ईश्वरको, जो परमात्मापनकी पूर्णता और आनन्दका आदर्श है, स्वीकार होता है। कारण कि उत्तम मार्दव इत्यादि ही वास्तविक मार्गकी पैड़ी हैं। परन्तु तर्क वितर्ककी शक्ति और (अन्ध) विश्वास आपसमें स्वाभाविक विरोध रखते हैं। क्योंकि इनमेंसे एक आज्ञानुवर्ती और दूसरी परीक्षक है। इस हेतु हाबिलको कायन मार डालता है।

१५—कायनको जो श्राप दिया गया है वह भी तर्क वितर्ककी शक्तिके साथ विधि मिलान रखता है। सेत जिसका अर्थ नियुक्तिका है वह आध्यात्मिक ज्ञान है जो मृत (अन्ध) विश्वासके स्थान पर स्थापित होता है। इस आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानका पुत्र एनूस है जो अपने आपको ईश्वरके नामसे विख्यात करता है। अर्थात् जो अपने तईं परमात्मा जानता है। यहूदियोंकी धार्मिक पुस्तकमें आदमके पाप (आज्ञाका उल्लंघन)का ऐसा भाव है। वह किसी सर्वज्ञ परमात्माके तुच्छ मानवी दम्पतिके पापोंसे क्रोधित होनेका इतिहास नहीं है और न कोई मनुष्य जातिकी जंगली अवस्थाकी गढ़ी हुई वाल कहानी ही है। परन्तु सत्य आध्यात्मिक विज्ञानके कतिपय सिद्धांतोंका अलंकारकी भाषामें वर्णन है।

मैंने कहा:—माताजी आपके मुखारविन्दसे यह व्याख्या सुनकर मेरे आश्चर्य और हर्षका ठिकाना न रहा। मैं तो अब तक यहूदियोंके मतको पाखण्ड और यहूदियोंको कुपथगामी समझता था और इस बाग और वृक्षोंकी कथाको गप्पाष्टक जानता था। आपकी शिक्षासे तो मेरे नेत्र खुल गये। यहूदी तो मेरे धर्मके भाई ही निकले। अब मेरा चित्त आपसे ईसाइयोंके मतका भेद जाननेके लिये उत्कँठित हो रहा है कृपा करके उसे भी वर्णन कीजिये।

माताजीने उत्तर दिया:—वास्तवमें यहूदियोंके मतका रहस्य बड़ा आश्चर्यजनक और हर्षदायक है और जब संसारके मनुष्य इसके असली भावको पूर्णतया जानने लगेंगे तो भेद-भाव सर्वथा नष्ट हो जायगा और फिर सत्य वैज्ञानिक धर्मकी विजयपताका समस्त देशोंमें फहराने लगेगी। ईसाइयोंके मतका रहस्य भी इतना ही मनोरञ्जक है, उसको तू ध्यानसे सुन-ईसू नाम उस आत्माका है जो अपने परमात्मिक स्वरूपसे भली-भाँति विद हो गया। इसका पिता ईश्वर और माता कुआँरी कन्या मरियम है। ईश्वरका भाव परमात्मस्वरूपका है और कुमारी मरियमका भाव बुद्धिसे है जो किसी पतिके संयोग द्वारा नहीं वरन् ज्ञानद्वारा गर्भवती होती है। इसी कारण ईसूके पिताको इञ्जीलकी एक पुस्तकमें बढ़ई लिखा है। बढ़ई ज्ञानका अलंकार है। कारण कि वह वस्तुओंको काटता (तत्त्व निकास = Analysis) और जोड़ता (संयोग = Synthesis) है।

मसीहका गर्भमें आना विना मैथुन पापके अर्थात् विशुद्ध रूपमें होता है, कारण कि यह गर्भ बुद्धिको होता है। किसी स्त्री पुरुषके संयोगसे नहीं। जब आत्माके परमात्मापनका विश्वास मनमें उत्पन्न होता है तब कहा जाता है कि ईसूका जन्म हुआ। बालक मसीह गुप्त रीतिसे उन्नति पाता रहता है जब तक उस के शत्रु नष्ट न हो जायें। भाव यह है कि सम्यग्दर्शन (सत्य श्रद्धान)-के उत्पन्न हो जानेके पश्चात् मसीहाई पद उस समय तक प्राप्त नहीं हो सक्ता जब तक कि अभ्यंतर आत्मिक प्रवृत्ति दुर्व्य-सनों, दुष्ट इच्छाओं और दुर्विचारोंको उपयुक्त रीत्या नष्ट न कर दे। फिर तपश्चरण करना पड़ता है जिसके कारण कतिपय अद्भुत शक्तियां आत्माको प्राप्त हो जाती हैं। अब वह समय आ जाता है कि जब शिष्य प्रारब्धके चौराहे पर अपनेको जीवन और मृत्युकी शक्तियोंको हाथमें लिये हुये खड़ा पाता है। क्योंकि इन वलिष्ठ शक्तियोंका सांसारिक उन्नतिके लिये प्रयोग करना ही आत्मोन्नतिकी जड़ काटना है। यही प्रलोभना है। इसी विषयमें इञ्जीलमें कहा गया है कि "शैतानने ईसूको संसारके राज्य दिखलाये जो उसको सिजदा करनेसे प्राप्त हो सक्के थे।" परंतु निर्वाणेच्छु (मुमुक्षु) साधु अब अपने इस इरादेसे कि वह अपने (बहिरात्मा)-को मसलूब (नष्ट) करे, नहीं बदल सक्ता है। अस्तु वह अपनी सलीब (सूली) अपने साथ लिये फिरता है और गोल गोथाके स्थान पर (जिससे भाव खोपड़ीके स्थानसे है) मसलूब होता है। खोपड़ीके विशेषार्थका संकेत सहस्रार

चक्रकी ओर है जिस पर अन्तमें ध्यान लगाया जाता है।

यथार्थ जीवनमें जो एक दम कसीर (महान) और प्रतापी है प्रविष्ट होनेके कारणसे जो बहिरात्मा (शारीरिक व्यक्तिपन)-को मसलूब किया जाता है, उसका फल इस प्रकार प्रगट होता है:—

१—चट्टानोंका फटना।

२—सूर्यका अंधकारमय हो जाना।

३—मन्दिरके परदेका ऊपरसे नीचे तक फट जाना।

४—कबरोंका खुल जाना और मुर्दोंका दिखाई देना।

यह सब गुप्त समस्यायें हैं जिनका अर्थ इस कालमें प्रथम बार तुझको बताया जाता है।

१—चट्टानोंके फट जानेसे अभिप्राय कर्मोंके कठोर (लोहेकेसे) बन्धनोंका टूटना है जो आत्माके अभ्यन्तर सूक्ष्म) शरीर में पड़े हुये हैं। तूने जैनियों और हिन्दुओंके पुराणोंमें पढ़ा होगा कि साधुओंके तपश्चरणसे इन्द्रका आसन कंपायमान होने लगता है और उत्कृष्ट साधुओंको सर्वज्ञता प्राप्त होनेके समय देवलोकके मंदिरोंके घंटे स्वयं बजने लगते हैं। इन विविध घटनाओंकी यथार्थता यह है कि उत्तम ध्यानके एकाग्र होनेसे जो कर्मोंके बन्धनोंका टूटना होता है उनसे उत्पन्न होनेवाली प्रबल कम्प क्रियायें, एक प्रकारके सूक्ष्म वर्की पुद्गल वर्गणाओं के बिना तार (Wireless)की तारबर्की द्वारा, उस सूक्ष्म माद्देसे, जिसके इन्द्रोंके आसन और देवलोकके

घण्टे बने होते हैं, टकराती हैं जिससे वे कम्पित होने और बजने और शब्द करने लगते हैं। स्वर्गके राजाओं (इन्द्रों)-के आसनोंके हिलने और देवों (स्वर्गके निवासियों)-के महलोंके घण्टोंके बजनेका यही कारण है।

२—सूर्यके अन्धकारमय होनेका भाव सीमित मनके कार्यालयके बन्द हो जानेसे अर्थात् इन्द्रियों और बुद्धिके नष्ट होनेसे है। सर्वज्ञताके प्रगट होने पर यह सब नष्ट हो जाते हैं और फिर इनकी आवश्यक्ता नहीं रहती है। यह अवश्य है कि मनुष्य इन्द्रियों और बुद्धिको अति आवश्यक उपयोगी पाते हैं परन्तु वास्तवमें यह आत्माकी यथार्थ एवं स्वाभाविक सर्वज्ञताके पूर्ण सर्वमय प्रकाशको रोकनेवाले हैं। इनका नष्ट होना, जब वह तपश्चरणकी पूर्णताके कारणसे हो, अति धन्य है। कारण कि तत्क्षण ही भूत-भविष्य—वर्तमान तीनों कालोंका पूरा पूरा ज्ञान उनकी पराजय पर प्राप्त हो जाता है यद्यपि अन्य सर्व स्थानों पर उनका नष्ट होना अवश्य ही एक महान संकट है।

३—मन्दिरके पर्देका फटना भी एक गुप्त शिक्षा है। जो पर्दा कि फटता है वह किसी हाथोंसे बनाये हुये चूने और ईंटके मंदिरका नहीं है सुतरां आत्माके मंदिरका है। अभ्यंतर प्रकाशके ऊपर जो पर्दा पड़ा हुआ है उसके

हटनेसे यहां भाव है जिससे परमात्मापनका यथार्थ प्रकाश हो जाता है, न कि एक चूने अथवा पत्थरके बने हुये मन्दिर वा उसके किसी भागके नष्ट होनेसे। आत्मिक प्रकाश इस अभ्यंतर पर्देके फटनेका तत्कालीन फल है।

४—परन्तु सबसे सुंदर अलंकार जो इस स्थान पर व्यवहृत हुआ है वह कब्रोंके खुल जानेका है। जिस वस्तुसे यहां अभिप्राय है वह प्रकट रूपमें किसी कबरस्तानकी कब्रोंकी पंक्तियां नहीं हैं जिनमें मुर्दे गाड़े पड़े रहते हैं। और न मुर्दोंकी सड़ी हुई लाशोंके किसी प्रबल शक्तिसे फेंके जाने और जनतामें प्रगट होनेसे है। सुतरां मानुषिक स्मरण शक्तिके कबरस्तानसे है; जहां भूतकाल की घटनायें और संस्कार उसी प्रकारसे दफन पड़े रहते हैं जैसे पृथ्वीके भीतर मुर्दे। यह शिक्षा पिछले जन्मोंके हालातके याद आनेको, जो तपश्चरण द्वारा सम्भव है, प्रकट करती है।

ईसाके शुभ जीवनका यह असली भाव है जो मैंने तुझे बताया। यहां भी मतभेद व धर्मविरोध जो इंजीलकी शिक्षा और आर्योंके धर्ममें मिलता है, वह केवल अलंकारोंके प्रयोग और उनसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंके कारणसे है।

मैंने कहा:—माता! आजकलके ईसाई तो अलंकारको स्वीकार नहीं करते हैं। क्या इंजीलमें कहीं इसका प्रमाण है कि

इन्जीलकी भाषा अलंकारयुक्त है? यदि हो तो कृपया प्रगट कीजिये।

माताका उत्तरः—हां! यह प्रश्न बहुत उन्नित है। कई स्थानों पर इन्जीलमें संकेत किया गया है कि कहनेवालेका भाव गुप्त है। और यदि तू स्पष्ट प्रमाणका इच्छुक है तो देख! इसी गलेटियंस की इन्जीलके चौथे बाबमें पौलस रसूलने स्पष्ट शब्दोंमें स्वयं इब्राहीम व उनकी दो स्त्रियों और पुत्रोंके बारेमें कहा है कि वह एक अलंकार हैं। इब्राहीम व उनकी स्त्रियों पुत्रों के बारेमें ईसाइयों, यहूदियों और मुसलमानों तीनों होका यह दृढ़ विश्वास है कि यह यथार्थरूपमें ऐतिहासिक हुये हैं। परन्तु सेन्ट पौलसने इस विश्वास पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। इसी गलेटियंसकी इन्जीलमें बताया गया है कि इब्राहीमकी व्याहता स्त्रीका अर्थ शुद्ध आत्मद्रव्यसे है और दासीका अर्थ कर्मोंके पुन्जसे है। व्याहता स्त्रीके पुत्रको मालिक ठहराया है और दासी पुत्रके लिये घरसे निकाल देनेकी आज्ञा है। भावार्थ यह है कि वहिरात्मा अर्थात् शारीरिक व्यक्ति ध्यानमेंसे निकाल देने योग्य है और उसके स्थान पर स्वात्मतत्त्वको विराजमान करना है। तुमने सुना होगा कि शास्त्रोंमें आत्मा तीन प्रकारकी बतलाई गई है।

(१) वहिरात्मा,

(२) अन्तरात्मा,

(३) परमात्मा,

इनमें वहिरात्मासे अभिप्राय ऐसे व्यक्तिसे है जो अपने आप

को पौद्गलिक शरीर ही समझे। अन्तरात्मासे मतलब जीवात्मासे है जो जीवके साथ लगी हुई अशुद्धतासे छूट कर शुद्ध आत्म-स्वरूपको धारण करता हुआ परमात्मपदमें विराजमान हो जावे। गलेटियंसकी इञ्जील (Galatians, IV. 21-31)-का भाव यही है कि दासीके पुत्र अर्थात् बहिरात्माको निकाल दो और अन्तरात्माको शुद्ध करके स्वयं परमात्मा बन जाओ।

मैंने कहा:—माताजी! आपने बहुत सत्य अर्थ बताया। मैंने भी स्वयं 'मत्तीकी इञ्जील'के पांचवें बाबमें जीवोंके लिये यह शिक्षा पढ़ी है कि उनको परमात्माकी पूर्णता प्राप्त करनी चाहिये। अब आपके मुखारविन्दसे ईसूकी अलङ्काररूप जीवनी का भाव समझ कर मुझे अति हर्ष हुआ। कृपा करके इञ्जीलमें वर्णित मुर्दोंसे जी उठनेकी शिक्षाका भेद भी मुझे बता दीजिये ताकि मैं भली प्रकार समझ लूं।

माताने कहा:—पुत्र! तेरी समझ बड़ी उत्तम है। यह बड़ी कठिन समस्यायें हैं जिनको तू जानना चाहता है। इनके समझनेमें एक बार लाखों नहीं वरन् करोड़ों मनुष्य कुमार्गगामी हुये और दुर्गतिको प्राप्त हुये। तेरी भक्ति और बुद्धिकी निर्मलता को देख कर तुझे समझानेको स्वयं दिल चाहता है। ले ध्यान दे कर सुन! अलङ्कारकी भाषामें मुर्दा ऐसे जीवको कहते हैं जो ज़िन्दा तो है परन्तु जिसे अपने वास्तविक स्वरूपका बोध नहीं है। ऐसे जीव आवागमनके चक्करमें नित्य मरते और जन्म लेते हैं। यही भाव उस इञ्जीलके वाक्यका है जो कहता है:—

"मुर्दोंको अपने मुर्दे गाड़ने दो"।

इसमें शब्द 'मुर्दों'का अर्थ अज्ञानी और 'मुर्दे'का अर्थ ऐसे अज्ञानीसे है जो मरगया है। इसी प्रकार यह भी कहा गया है किः—

"वह जो विषय भोगोंमें आसक्त हो चुकी है मुर्दा है यद्यपि वह जीवित है" (१-टिमोथी ५/६)।

अतः मुर्दोंसे जी उठनेका अर्थ भी पारिभाषिक है। और उसका अभिप्राय मुक्ति पानेसे है। वर्तमान समयके लोग मुर्दोंसे जी उठनेका अर्थ उल्टा पल्टा लगाते हैं और कहते हैं कि दुनियांके अन्तमें एक दिन तमाम मुर्दे जी उठेंगे और फिर कुछ लोग जिन्होंने बुरे काम किये हैं सदाके लिये नर्कमें डाल दिये जायेंगे और वह जिन्होंने अच्छे काम किये हैं स्वर्गमें रहेंगे और अपने स्त्री पुत्रों समेत रहकर वहां सुख भोगेंगे। यह मिथ्या कल्पना है जिसके खण्डन करने का स्वयं इञ्जीलमें प्रयत्न किया गया है। सदूकियों द्वारा एक काल्पनिक प्रश्न उठवा कर इस मसलेको साफ कर दिया गया है। वह प्रश्न इस भांति है किः-कयामतमें एक अमुक स्त्री किस की पत्नी होगी, जिसने इस जगतमें सात भाइयोंसे उनके एकके पश्चात् दूसरेके मरजाने पर विवाह किया था? इसका उत्तर लूकाकी* इञ्जीलमें निम्न प्रकार दर्ज है।

---

* लूकाकी इंजील अध्याय २० आ० ३४-३६

" इस जगतके पुत्रोंमें विवाह शादी होती है परन्तु जो लोग इस योग्य माने जायेंगे कि उस जगतको प्राप्त करें और मुर्दोंमेंसे जीवित हो उठें ; वह विवाह नहीं करते और न उनकी शादी कराई जाती है और न वह फिर मर सक्ते हैं कारण कि वह देवोंके सदृश हैं और ईश्वरके पुत्र हैं इस कारणसे कि वे कयामतके पुत्र हैं।"

यहां यह प्रत्यक्षरीत्या बताया गया है:—

(१) कयामत प्रत्येक मनुष्यके लिये नहीं है सुतरां केवल उन्हींके लिये है जो उस जगत्के पानेके और मुर्दोंसे जी उठनेके योग्य माने जाते हैं।

(२) उस जगतमें विवाहकी रीति रिवाज नहीं है। और

(३) जो लोग मुर्दोंसे जी उठते हैं वह अनादि जीवन पाते हैं और कयामतके पुत्र होनेके कारण ईश्वरके पुत्र कहलाते हैं।

परन्तु इनमेंसे पहिली बात ही कयामतके सिद्धान्तके सम्बन्ध में प्रचलित शिक्षाकी घातक है जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य योग्यताका ध्यान न रखते हुये जीवित किया जायगा। इञ्जील प्रकट रीत्या कहती है कि वह अवस्था केवल उन्हींके लिये है जो इसके योग्य समझे जायेंगे। दूसरी बात सर्व साधारण के मसीही (विश्वास) से और भी विरुद्ध है जिसके अनुसार स्त्रीपुरुष पौद्गलिक शरीरोंके साथ जी उठेंगे और उन पवित्र किये जायेंगे . अब यदि मुर्दोंसे जीवित हुये मनुष्योंमें स्त्रीपुरुषका

भेद होगा तो उनकी अवस्था उन विधवाओंकीसी होगी जिनको पुनर्विवाह करनेकी आज्ञा नहीं दी गई है और जिनके साथ ईसाई लोग, इस कारणसे कि बलात्कार उन पर जीवन भरका वैधव्य डाल देना अदया और अन्यायका काम है, अत्यन्त अनुकंपा प्रगट करते हैं ! हम पूछते हैं कि क़यामतके बादके जगतके उन मनुष्योंकी क्या अवस्था होगी जो पुरुष और स्त्री तो होंगे परन्तु जो विवाहके सुखसे वञ्चित रक्खे जायंगे ? क्या इन्द्रियका अवयव जब कि वह अपना काम न कर पावे, असह्य दुःखका कारण न होगा ? और ऐसी प्रत्येक आत्मासे, जिसने कभी किसी प्रकारके नियम और क्रियाका पालन नहीं किया है और जो तपस्याके तंगद्वार और संकुचित मार्गमेंसे नहीं, सुतरां किसी मोक्षप्रदायककी कृपा व अनुग्रहसे ईश्वरके राज्यमें प्रविष्ट हुवा है, यह आशा करना कि वह एक जैन अथवा हिन्दू विधवाके सदृश सदैव परहेज़गार बनी रहेगी, व्यर्थ है। हां ! ऐसी ही कठिनाइयां हैं जिनमें अवैज्ञानिक विचार पड़ा करता है जब वह घटनाओंके विपरीत मत देने पर उतारू होता है।

तीसरी बात अर्थात् नित्य जीवन जीवित हुये मनुष्योंका पा लेना भी इतना ही आश्चर्यजनक है। सांसारिक जीव आत्मद्रव्य और पुद्गलका समुदाय है और समुदायका यह लक्षण नहीं है कि वह अविनाशी हो। और न अमरजीवन कोई ऐसा पदार्थ है कि जो कहीं बाहरसे मिल सके। यथार्थता यह है कि क़यामतका सिद्धान्त वास्तवमें आवागमनका सिद्धान्त है

यद्यपि वह गुप्त समस्यावाली भाषामें छुपाया गया है। यहूदी लोग इससे अपरिचित न थे और फ़रीसी लोग प्रकटरीत्या इसको मानते थे। परन्तु क़यामतके दिवसके ईश्वरका यथार्थ प्रारम्भ हिन्दुओंका देवता यमराज है, जो जीवोंके मरने पर उनके पुण्य और पापका परिमाण लगाता है। और उनको उनके योग्य स्थानों पर भेज देता है।

यह यमराज कर्म्म (प्राकृतिक नियम)-का चित्र (रूपक) है जो इस कारणवश कि वह विभिन्न द्रव्यों और उनके प्राकृतिक गुणों और शक्तियोंसे उत्पन्न होनेवाला परिणाम है, किसी दशामें भूल नहीं कर सक्ता है। परंच मुर्दोंके एक नियत दिवस जगतके अन्त पर जी उठनेकी कल्पना इस सिद्धान्तसे किसी धर्ममें भी सम्बंध नहीं रखती थी। यद्यपि कतिपय शास्त्रोंका उपदेश बाह्य शाब्दिक अर्थोंमें इस प्रकारके अर्थको खींच तान कर स्वीकार कर सक्ता है। यथार्थ भाव यह था कि प्रत्येक व्यक्तिके मरने पर उसकी आक़बत (भविष्य)-का निर्णय कर्मके नियमसे, जो मृत्युके देवताके रूपमें बांधा गया है, स्वतः हो जाता है। और वह एक नवीन जन्ममें द्वितीय बार जन्म धारण करनेके लिये प्राकृतिक आकर्षणसे पहुंच जाता है यह क्रम जन्म मरणका निर्वाण प्राप्ति तक, जिसका अर्थ मृत्यु पर विजय पाना अर्थात् मुर्दोंसे जी उठना है, चालू रहता है। मुर्दों से अभिप्राय उन समस्त आत्माओंसे है जो आत्मावस्थामें जीवित नहीं हैं, जैसा कि अभी बताया जा चुका

इञ्जीलकी किताव मुकाशिफा* (प्रकाशित वाक्य) का भी ऐसाही भाव है—कि जहां एक पूर्णात्मा (जीवन) के मुखसे कहलवाया है किः—

"मैं वह हूं जो जीवित रहता है और मर गया था और देख ! मैं अनन्त समय तक जीवित रहूंगा ।
आमीन ! और मौत और दोजखकी कुञ्जियां मेरे पास हैं ।"

अस्तुः मुर्दोंसे जी उठने, अथवा कयामतका अर्थ मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है । अर्थात् उस कमताईके दूर करनेसे है जो आत्मपतनके कारणवश उत्पन्न होती है । वह कमताई राग और द्वेषके कारणसे है (जिनको कवि कल्पनामें पाप और पुण्य का फल बांधा गया है) और चारित्रको ठीक करके मृत्युको परास्त करनेसे दूर हो जाती है, जब कि वह मनुष्य जो "उस जगतके पाने और मुर्दोंसे जी उठनेके योग्य, ख्याल किये जाते हैं" फिर कभी नहीं मर सक्ते ।†

इस प्रकार मृत्युका साम्राज्य उस प्रदेशमें सीमित है जहां राग और द्वेष अर्थात् व्यक्तिगत प्रेम और घृणा पाये जाते हैं । राग और द्वेष कर्मोंके वन्धन और आवागमनके वास्तविक कारण हैं । उनसे आत्मा और पुद्गलका मेल होता है जिससे आत्माकी

* देखो अध्याय १ अध्याय १८ ।

† देखो लूकाकी इंजील अध्याय २० आयत ३६ ।

शक्ति निस्तेज पड़ती है। यहूदियोंके मर्म ज्ञानमें भी आवागमन का सिद्धान्त माना गया है। इस बातको वर्तमान खोजियोंने भी माना है कि:—

"कब्बालह (गुप्त समस्या)के फिलूसफाके ज़माने में यहूदी आवागमनके सिद्धान्तको स्वीकार करते थे और इस बातको मानते थे कि आदमकी आत्माने दाऊदमें जन्म लिया था और भविष्यमें मसीह होगी।"†

सच तो यूँ है कि आवागमनका सिद्धान्त यहूदियोंके मतके प्राचीन प्रारम्भिक शिक्षाएँ गर्भित है। अब तू मृत्युका स्वरूप सुन! मृत्यु आत्मा और पुद्गलके मेलका फल है। इस कारणसे कि वह दोनों ही स्वतंत्रताकी अवस्था (निज स्वरूप)में अविनाशी हैं। क्योंकि वह दोनों अर्थात् विशुद्ध आत्मद्रव्य और पूर्ण पुद्गलके परमाणु असंयोजित (अखण्ड) हैं और इसलिये नष्ट होनेके अयोग्य हैं। अस्तु: जो कोई अमर-जीवनका प्राप्तेच्छु है उसको चाहिये कि वह उसको अपने ही स्वभावमें अपनी आत्मासे उस बाह्य पुद्गलके एक एक परमाणु को, जो उससे लिपटा हुआ है, पृथक् करके छूटे। यह एक ही प्रकारसे सम्भव है अर्थात् केवल तपस्या द्वारा। जब कोई मुमुक्षु सर्व प्रकारके राग और द्वेषसे रहित हो जाता है तब कहा जाता है कि उसने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली यद्यपि वह इस संसार

† देखो The Nature of Man पृष्ठ १९३-१९४

में मनुष्योंके मध्य जीवित रहता है जब तक कि, उसके शरीर पूर्णतया उससे विलग नहीं हो जाते। उस कालमें वह जीवन मुक्त कहलाता है। अन्ततः जब वह सर्व पौद्गलिक सम्बन्धोंसे छुटकारा पाता है तो वह तत्त्रण लोकके शिखर पर विशुद्ध नूर (दिव्य आत्मद्रव्य)-के रूपमें पहुंच जाता है और दि मोस्ट हाई (The Most High= परमोत्कृष्ट परमात्मा) कहलाता है। क्यों उस जगतमें विवाह नहीं होता है और न कराया जाता है इसका कारण यह है कि उस जगतमें लिङ्ग भेद ही नहीं है। लिंग भेदका सम्बन्ध शरीरसे है न कि आत्मासे। इस कारणवश एक ही आत्मा आवागमनके चक्करमें कभी पुरुष और कभी स्त्रीका रूप धारण करता है। परन्तु जब वह इस संसार सागरके दूसरे किनारे पर पहुंच जाता है तो उसके विषय प्रसंग के ख्यालात और वह पौद्गलिक शरीर जो लिंगभेदकी इन्द्रियोंके लिये आवश्यक है, दोनों ही तप और ज्ञानकी अग्निसे जल जाते हैं। यही कारण है कि निर्वाणमें जीव न विवाह करते हैं और न उनका विवाह कराया जाता है। अस्तुः "ईश्वरके पुत्र" (Sons of God) वह विशुद्ध और पूर्ण महात्मा हैं जिन्होंने अपने उच्च आदर्शको प्राप्त कर लिया है और जो परमात्मा हो गये हैं। उन्होंने अपने कर्मोंकी कैद और उनसे उत्पन्न होनेवाले बारम्बारके जन्म मरणके फन्दोंको तोड़ डाला है। और अब लोक के शिखर पर मिथ्यात्व और उसके परम मित्र मृत्युके विजयीके तोर पर जीवित हैं। वह ईश्वरके पुत्र कहलाते हैं इस कारणसे

कि उन्होंने परमात्माकी पूर्णताको प्राप्त किया है जो जीवनका अन्तिम ध्येय (अभिप्राय) है, मानो परमात्मापन अथवा खुदावंदी को उत्तराधिकारमें पाया है। विशुद्धपूर्ण आनन्द अर्थात् कभी न कम होनेवाला सदैवका परमानंद मृत्युको परास्त करनेकी शक्ति अर्थात् अमरजीवन, अनन्तशक्तिमत्ता, अनंतज्ञान, अनंत दर्शन जिनको जैनधर्मके शास्त्रोंमें अनंत चतुष्टय कहते हैं उन विशुद्ध आत्माओंके गुण हैं। यह मनुष्य जातिके यथार्थ शिक्षक हैं और ज्ञान अर्थात् धर्मके यथार्थ श्रोत्र हैं। उनके मुख्य गुण इन्जीलमें निम्न प्रकार लिखे हैं:—

(१) आत्मिक योग्यता जिससे वह उस जगत अर्थात् निर्वाणको पाते हैं।

(२) लिंगभेदसे रहित होना अर्थात् सर्व प्रकारके शरीरोंसे छुटकारा।

(३) मृत्युसे मुक्ति और

(४) परमात्मापनकी प्राप्ति।

इसी कारणसे उनके लिये यह भी कहा गया है कि वह फिर मर नहीं सके हैं।

मैंने कहा:—माताजी! आपके वचनामृतको मैंने खूब दिल खोल कर पिया और इससे जो तृप्ति व शान्ति मुझे प्राप्त हुई है उसका वर्णन वाणीद्वारा नहीं हो सक्ता है। यह मनुष्य जातिके दुर्भाग्य हैं कि ऐसी उत्तम शिक्षा इस प्रकार सदियों (शताब्दियों) छिपी हुई पड़ी रही, किसीको इसके यथार्थभाव

का पता न लगा। परन्तु प्रतीत होता है कि अब उनके दुर्भाग्य-का अन्त समय आ गया क्योंकि आज आपने स्पष्ट रीतिसे इन समस्याओंका रहस्य प्रकट कर दिया। अब मैं उस धर्मको भी जानना चाहता हूं कि जो पिता पुत्र और पवित्र रूहको त्रिमूर्ति से सम्बन्ध रखता है। कृपया यह भेद भी मुझे बताइये ताकि मेरी चिंता दूर हो।

ज्ञाताजीने उत्तर दिया:—यह सत्य है कि वर्तमान-कालके मनुष्य बड़े दुर्भागी हैं। वास्तवमें गुप्त रहस्योंमें माणिक ही भरे हुये हैं। परन्तु समयके प्रभावसे उनके जाननेवाले नहीं रहे। अब वह माणिक सर्व स्थानमें कोयलाफरोशोंके हाथोंमें पड़ गये हैं, जिनको यह कोयलेके टुकड़े ही भासते हैं। इन्जील की त्रिमूर्तिका भेद भी बड़ा मनोरञ्जक और प्राचीन है। पिता, पुत्रकी कल्पनाका यथार्थ उत्पत्तिस्थान हिन्दूधर्म है। यह क्योंकर है सो अब तुझे बताते हैं। तूने सुना होगा कि एक समय इन्द्र देवताको सावित्री देवीने कुपित हो कर श्राप दिया था कि वह अपने देश तथा शहरसे पृथक् हो जायगा और परदेशमें ज़ंजीरों द्वारा बन्धनावस्थाको प्राप्त होगा। तत्पश्चात् गायत्री देवीने इस श्रापको कुछ हलका किया था और यह वरदान दिया था कि इन्द्रका पुत्र उसको मुक्ति देगा। पिता पुत्रका मसला इस हिन्दू समस्याके समयसे प्रचलित है। भावार्थ इसका यह है कि इन्द्र देवता स्वयं प्राणीकी आत्मा है जो संसारी अवस्थामें अपने निजी स्वभाव और परमात्मपदसे पतित कर्म

रूपी ज़ंजीरोंसे जकड़ा हुआ आवागमनके चक्रसे देशदेशान्तरोंमें भ्रमण किया करता है। यही संसारी जीव इन्द्र है जो सावित्री देवीके आपको पूर्णरूपसे दर्शाता है। और इसी अमुक्त अपवित्र संसारी जीव अर्थात् इन्द्रमेंसे ज्ञान व तपके परिणामरूप जो शुद्ध परमात्मस्वरूप आत्मा प्रकट होता है वह अलंकारकी भाषा में उसका पुत्र कहा गया है। यह कारण है कि इन्द्र अपने पिता-का पिता कहलाता है जिसका भाव तुझे पहिले बताया गया है। इञ्जीलकी अलंकारित परिभाषामें भी जीवन सत्ता (Life)-का नाम पिता है। इसी जीवन सत्तामेंसे जो मुक्तरूपी पुत्र आत्मा के निज शुद्ध स्वरूपको धारण किये हुये प्रगट होता है वह पुत्र है और पवित्र रूह जो तीसरा अभिन्न मेम्बर इस त्रिमूर्तिका है वह वैराग्यमयी भाव है जिसके द्वारा निज शुद्धात्मिक पवित्रता प्रगट होती है। यह भी तुझे समझ लेना चाहिये कि अँग्रेजी शब्द होलीका वास्तविक अर्थ पूर्ण बनाना है अर्थात् होली घोस्ट (पवित्रात्मा) वह विशेष वैराग्यमयी शक्ति है जो अपूर्ण संसारी जीवको परमात्मपदकी पूर्णता प्रदान करती है।

मैंने विनय किया:—आज मेरे बड़े पुण्यका उदय हुआ है जो आपकी कृपासे मुझे ऐसे २ भेद जाननेको मिले हैं। यह वह भेद हैं जिनके जाननेके लिये बड़े २ योगीश्वरोंने अपनेमें शक्ति नहीं पाई परन्तु आपकी कृपासे सहजमें ही मुझे यह अपूर्व ज्ञान प्राप्त हो गया। अब प्रतीत होता है कि मनुष्य जातिके भाग्य जाग उठे हैं और वह समय निकट आ गया कि अज्ञानका अंधकार तत्क्षण

ही दूर हो जावे। अब मैं दीन इस्लामके रहस्यको भी आपके मुखारविन्दसे सुनना चाहता हूं। कृपा करके उसका भेद भी मुझ पर प्रगट कीजिये।

माताने उत्तर दिया:—इस्लाम, यहूदी और ईसाई मतों से पूर्णतया सम्बन्ध रखता है और उसमें यहूदी मतके कथानक अधिकांशमें स्वीकार किये गये हैं। आत्माके पतनका हाल, जो अदनके बागकी कथामें यहूदियोंके पूज्य पुस्तकमें लिखाया गया है मुसलमान मतके संस्थापकने माना है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी .कुरानशरीफमें पूर्वके शास्त्रोंकी सत्यताको स्वीकार किया गया है; और वही नियम जो धार्मिक विज्ञानके स्तम्भ हैं मुसलमानोंके पूज्य शास्त्रमें भी पाये जाते हैं। सूरै जुरइयत में स्पष्ट रीतिसे कहा गया है कि "मैं तुम्हारे अस्तित्वमें विराजमान हूं परन्तु तुम नहीं समझते हो" इसका अर्थ यही है कि जीव स्वयं ही गुणोंकी अपेक्षा परमात्मस्वरूप है। स्वयं मोहम्मद साहबने कहा है "ऐ मनुष्य! तू अपनेको पहिचान"। एक अन्य स्थानपर यह भी कहा गया है कि जो अपने आपको जानता है वह खुदाको जानता है। साधारण मुसलमानोंने कुरान शरीफको स्थूल दृष्टिसे ही पढ़ा परन्तु प्राचीन सूफियोंको बहुत कुछ अंशमें उसके असली भावका पता मिला था। सूफी कवि फरीदुद्दीन अत्तारने साफ साफ कहा है:—

"ता तु हस्ती ख़ोदाय दर ख्वाबस्त,
तू न मानी चुओ शवद वेदार।"

इसका उर्दू भाषान्तर कवितामें ही इस प्रकार है:—

तेरी हस्ती है दाइम एक खुदाके ख्वाब गफ़लतकी,
रहे जब तू न आलममें तो वह बेदार हो जावे।

इसका अर्थ यही है कि जब तक यह अहङ्कारका पुञ्ज बहिरात्मा तुझमें विद्यमान है, एक परमात्मा सुषुप्ति अवस्थामें है। जब इस बहिरात्माका अस्तित्व नष्ट हो जायगा तब वह जागृत होगा। दूसरा सूफ़ी कहता है कि:—

तजल्ली हस्त [illegible] जाने [illegible]।
शहूदे [illegible] ख्वाही [illegible] ईजास्त [illegible]॥

मतलब यह है कि मनुष्यकी आत्मामें समस्त पारमात्मिक गुण विद्यमान है। यदि तू उनका अनुभव करना चाहता है तो यहीं उनका अनुभव कर। काबे और बुतखाने क्यों जाता है? एक मुसलमान शायरका क़ौल है:—

ऐ क़ौम ब हज रफ़्ता कुजाएद कुजाएद।
माशूक़ हमींजास्त बियाएद [illegible]॥
माशूक़े तो हमसाया ओ दीवार ब दीवार।
दर बादिया सरगश्तः चराएद चराएद॥

ऐ लोगो! हज करने कहां जाते हो? माशूक़ यहीं है यहीं आओ, यहीं आओ। माशूक़ तो बिल्कुल तुम्हारा पड़ोसी ही है, दीवारसे दीवार मिली है। तुम बियाबानमें क्यों फिरते हो? क्यों फिरते हो। दूसरा शायर कहता है:—

यार पिनहांनस्त दर ज़ेरे नक़ाब ।
हमचु दरिया को निहां शुद दर हुबाब ॥
कश्फ़ दर मानी बुअद रफ़ए हिजाब ।
बूद तो आमद बरूदये तो नक़ाब ॥
परदह बरदारो जमाले यार बीं ।
दीदह वाकुन चेहरए इसरार बीं ॥

'यार नक़ाबके भीतर छिपा हुआ है जैसे दरिया हुबाबमें छुप जाता है। अर्थके समझनेसे पर्दा उठ जाता है। तेरी ही हस्ती तेरे ऊपर नक़ाब बन गई है। पर्दा उठा और यारका जमाल देख, आंखें खोल और भेदको समझ'। एक और मुसलमानका वाक्य है:—

मनम ख़ुदा वो बआवाज़े बलन्द मी गोयम् ।
हरआं कि नूर देहद मेहरोमाह रा ओयम् ॥

इसका अर्थ भी यही है कि आत्मा ही स्वयम् परमात्मा है। इसी आशयको निम्नलिखित शेर (पद्य) भी प्रगट करते हैं:—

(१) मूक़ामे रूह बर मन हैरत आमद ।
निशाँ अज़बे व गुफ़्तन गैरत आमद ॥
(२) तुई आशिक़ बज़ाहिर तरीक़त ।
तुई माशूक़ बातिन दर हक़ीक़त ॥
(३) गर बकुंनह ख़ुद तुराबाशद रहे ।
अज़ ख़ुदाओ ख़ल्क़ बेशक आगहे ॥
(४) हम अज़ई गुफ़्तस्त दर बहरे सफा,

नेस्त अन्दर जुब्बः अम गैरे खुदा।

(५) ऐन आवे आब मे जूई अजब।
नकदे खुदरा निस्यान मी गोई अजब॥

(६) पादशाही अरचे मेमानी गदा।
गनजहा दारी चराई वेनवा॥

इसका अनुवाद इस प्रकार है:—

(१) आत्माका स्थान मेरे लिये अति आश्चर्यजनक था।
मैं लज्जित हूँ कि मैं उसकी प्रशंसा करनेमें हीन हूँ।

(२) तू ही प्रगट आशिक नियमके अनुसार है। और
तू ही वास्तवमें स्वयं माशूक भी है।

(३) यदि तू अपने भेदको पाले, तो ईश्वर और जगत्
के भेदसे अवश्य भिन्न हो जावे।

(४) इसी वजहसे वहर सफामें कहा है कि मेरे जुब्बह
(चोगे)-में सिवाय ईश्वरके अन्य नहीं है।

(५) तू तो स्वयं आब (पानी) है और पानीको ढूँढ़ता
है। अपनी सम्पत्तिको भूल गया है और अब
ढूँढता है आश्चर्य है।

(६) तू बादशाह है, भिखारी किस लिये बनता है।
सर्व कोषागार तेरी सम्पदा है। फिर तू निर्धन
क्यों है?

यह मन्त्र ईश्वरके उस संक्षेप वक्तव्यके विवरण हैं जो
निम्न प्रकार है:—

मैंने कहाः—माताजी ! इस प्रश्नको आपने इतना स्पष्ट कर दिया कि जिससे मेरी सब शंकायें एकदम नष्ट हो गईं। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूं कि मुसलमानों और ईसाइयों के मतमें वैराग्य और चारित्रका क्या स्वरूप बताया गया है ?

माताने उत्तर दियाः—ईसाइयों और मुसलमानों दोनों-के मतोंमें चारित्रकी शुद्धि और तपश्चरण ही मोक्ष मार्ग बताये हैं, परन्तु इनका वर्णन गौण रूपमें है। थोड़ेसे प्रमाण तुझे पहिले ईसाइयोंकी इञ्जीलके देंगे। तीव्र बुद्धिवाला उनको स्वयं सहज में ही समझ लेगा। इसके पश्चात् कुरानशरीफ और मुसलमान दरवेशों (साधुओं)-के वाक्य तुझे सुनायेंगे। जिनसे यह सिद्ध हो जायगा कि मुसलमानी मतकी शिक्षा भी इस बारेमें वैसी ही है जैसी आर्य लोगोंके धर्मकी। तू अब इञ्जीलके प्रमाणोंको सुन।

३—"अस्तु, अपने उन अवयवोंको मुर्दा करो जो पृथ्वी पर हैं।"

४—"और शारीरिक प्रवृत्ति मृत्यु है परन्तु आत्मिक प्रवृत्ति जीवन और विश्वास है।"

५—"संकेत फाटकसे प्रविष्ट हो कारण कि वह द्वार चौड़ा है एवं वह मार्ग विशाल है जो दुखको पहुंचाता है और उससे प्रवेश करनेवाले बहुत हैं कारण कि वह फाटक संकेत है और वह मार्ग सकड़ा है जो जीवनको पहुंचाता है और उसको पानेवाले थोड़े हैं।"

६—"खेद तुम पर जो अब भरपूर हो क्योंकि भूखे होंगे। खेद है तुम पर जो अब हंसते हो क्योंकि मातम करोगे और रोओगे। धन्य तुम भूखे हो क्योंकि सुखी होओगे धन्य हो तुम जो अब रोते हो क्योंकि हँसोगे।"

७—"यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे तो अपनी खुदीसे इन्कार करे (इच्छाको मारे) और अपनी क्रास (सलीव) उठाये और मेरे पीछे हो ले।"

३—कलेसियों अ० ३ आ० ५।

४—रोमियों अ० ८ आ० ६।

५—मत्ती अ० ७ आ० १३-१४।

६—लूका अ० ६ आ० २५ व २१।

७—मत्ती अ० १६ आ० २४।

८—"और जो कोई अपनी सलीब नहीं उठाता है और मेरे पीछे चलता है वह मेरे योग्य नहीं।"

९—"यदि कोई मेरे पास आये और अपने पिता, माता, स्त्री, संतान, भाइयों और बहिनों वलिक अपनी जानसे भी दुश्मनी (वैर) न करे तो मेरा शिष्य नहीं हो सक्ता।"

१०—"जो कोई अपनी जान बचानेकी कोशिश करेगा वह उसे खोयेगा। और जो उसे खोयेगा वह उसे जीवित रक्खेगा।"

११—"लोमड़ियोंके भट्ट होते हैं और पवनके नभचरोंके घोंसले, परन्तु मनुष्यके पुत्रके लिये सिर धरनेको भी जगह नहीं है।"

१२—"परिश्रम और पीड़ामें, बारहा जागृत अवस्थामें, भूख और प्यासकी तृष्णामें, बारहा उपवासोंमें, शीत और नग्नपनकी अवस्थामें।"

१३—"........और कुछ नपुंसक ऐसे हैं जिन्होंने मोक्षके साम्राज्यके लिये अपने आपको नपुंसक बनाया है।"

१४—"बल्कि मैं अपने शरीरको ताडना करके वशमें लाता हूं।"

१५—"और जो मसीह ईसूके हैं उन्होंने शरीरको उसकी वासनाओं और इच्छाओं समेत सलीब पर खींच दिया है।"

१६—"अस्तु, ऐ भाइयो! मैं खुदाकी रहमतें याद दिलाकर तुमसे विन्ती करता हूँ कि तुम अपने शरीरोंको जीवित और विशुद्ध और ईश्वरको प्रसन्न करनेवाले बलिदान के तौर पर भेंट कर दो। यही तुम्हारी उपयुक्त सेवा है।'

इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि इञ्जीलकी शिक्षानुसार शरीर संयोगके कारणोंका विध्वंस करना आत्मोन्नतिका बीज बोना है। मानसिक इच्छाओंको मारना, शारीरिक प्रवृत्तिसे मुंह फेरना, कठिन तपस्याके तंग मार्ग पर चलना, भूक प्यासको वशमें करना, अपने शरीरको सलीब (अचेतन क्रास)-की भांति

१३—मत्ती अध्याय १९ आ० १२।

१४—१-करन्थियों अ० ९ आ० २७।

१५—गलीतयों अ० ५ आ० २४।

१६—रोमियों अ० १२ आ० १।

मान कर सर्व कार्य करना, माता-पिता-स्त्री-संतान और भ्राताओं
आदिसे अनुराग न करना और स्वयं अपने जीवनसे भी राग-
को तोड़ देना, सन्यासीके अनुसार गृहस्थी और घरको त्याग
कर व्यवहार करते रहना, सन्यासकी परीक्षाओं (कठिनाइयों)
को सहर्ष सहन करना, ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना और हर
प्रकारसे शरीर और उसके अवयवों (वाञ्छाओं और इच्छाओं)
को तपकी अग्निमें आहुति देकर बलिदान कर देना ही मोक्षके
कारण हैं।

अब मुसलमानोंके मतके बारेमें सुन। उनके यहां भी उपवास अर्थात् रोज़ा, तीर्थयात्रा (हज) बलिदान अर्थात् इन्द्रियनिरोध इत्यादि ही मोक्षके कारण बतलाये गये हैं। मुसलमान सूफ़ी दरवेशोंने कहा है कि :—

(६) अलायक़हाय दुनिया कतश्र गरदाँ,
हर्ज़ी दिल बाश दरवे चूँ ग़रीबाँ।
(७) ज़हे ग़फ़लत कि मारा कोर करदस्त,
कि यादे मर्ग अज़ दिल दूर करदस्त।
(८) ता न गरदद नफ्स तावे रूह रा,
के दवा यावी दिले मजरूह रा।
(९) मुक़ामे फ़ुक़्र बस आली मुक़ामस्त,
मनी वो मादराँ जा बस हरामस्त।
(१०) दरआं मन्ज़िल बुग्रद कश्फ़ो करामात,
वले बायद गुज़श्तन ज़ां मुक़ामात।
(११) अगर दुनिया व उक़्बा पेश आयद,
नज़र करदन दर आँ हरगिज़ न शायद।
(१२) अगर गरदी तो दर तौहीद फ़ानी,
वहक़ यावी वक़ाये जिन्दगानी।

इनका अर्थ इस प्रकार है :—

(१) तू दीनके वास्ते दुनियांको छोड़ दे, तू ईश्वर पर श्रद्धापूर्वक भरोसा कर।

(२) ख़ुदीकी सूरतमें तू क़लम मार दे, तू इच्छाकी गढ़ीको जड़से उखाड़ कर फेंक दे।

(३) इन्द्रियोंको तू चोरकी भांति क़ैद कर ले, जब चोर पकड़ लिया तो शांतिसे हर्ष मना।

(४) जब तुझे यहांसे जाना है तो फिर अपने चित्तको सांसारिक कार्योंमें क्यों लगाता है।

(५) संसारके कामोंमें जनसाधारण संलग्न हैं। सबोंने मृत्युका ध्यान चित्तसे बिसार दिया है।

(६) संसारके सम्बन्धोंको छोड़ दे। तू उसमें यात्रियोंकी भांति उदासीन चित्तसे रह।

(७) क्या निद्रा है कि हमको अंधा कर दिया है कि मृत्यु का विचार हृदयसे निकाल दिया है।

(८) जब तक इन्द्रियां आत्माके आधीन नहीं हो जातीं, पीड़ित हृदयका इलाज कैसे सम्भव है।

(९) साधुताका स्थान बस ब्रह्मस्थान है। मैं और मेरेका गुज़ारा उसमें नहीं है।

(१०) उस अवस्थामें अद्भुत कृत्य होते हैं। परंतु वहांसे गुज़र जाना चाहिये।

(११) यदि दोनों संसार तुझे सामने आ जावें, तो भी उन पर दृष्टि न डालना चाहिये।

(१२) यदि तू तवहीद (अद्वैतत्व)-में विनाशको प्राप्त हो जावे, तो सत्यतामें अमरजीवन पावे।

कुरान शरीफकी जिन आयतोंमें * उन्नति करनेके मार्गोंमें ध्यान पर ज़ोर दिया गया है :—

(१) "सहनशीलताको अमलमें ला और उच्च शिक्षा दे और नीचसे दूर हट जा।"

(२) "......कि वह अपने आपको धर्ममें उसको समझ कर शिक्षा दे सकें।"

(३) "कितने आदमी इन बातों पर अपने मनमें विचार करते हैं।"

(४) "यह एक मनुष्यके लिये उपयुक्त नहीं है कि खुदा उसको एक ईश्वरीय किताब दे और बुद्धि दे और भविष्यवक्तव्यकी योग्यता दे! और वह मनुष्योंसे कहे कि तुम खुदाके अतिरिक्त मेरी पूजा करो। परन्तु उसको यह कहना चाहिये कि तुमको ज्ञान और चारित्रमें पूर्ण होना चाहिये क्योंकि तुम शास्त्रोंके जाननेवाले हो। और तुमको उन पर चलना चाहिये।

इनके अतिरिक्त और भी दरवेशोंका कलाम है जो कहता है:—

(१) मुर्गे जान अज़ हव्ते तन यावद रिहा+
　　गर बतेग़ ला कुशी ई अज़दहा।

(२) सफ़ाते नफ़्स शहवतहा बुरीदन+
　　सफ़ाते दिल हमा ताअत वकरदन।

---

(१) प० १२५ (२) प० १४६।
(३) प० ३५३। (४) प० ४१।

रिक भाषायुक्त धर्म हैं उनके अनुयायियोंको एक एक स्पष्ट आलंकारिक चित्रोंका मिल जाता है। फिर जब वे बड़े हो जाते हैं और अपने २ चित्रोंको एक दूसरेसे मुकाबिला करते हैं तो उन के भावार्थ न समझनेके कारण एकको दूसरेके चित्रोंमें विरोध और वैधर्मीके अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता है। यही कारण पारस्परिक वैरभावका है। यदि मनुष्य अपने और दूसरेके चित्रोंका भाव समझ पाये तो इस धार्मिक विरुद्धता और इससे उत्पन्न होनेवाले वैर भावोंका सर्वथा नाश हो जावे। अब समय आ गया है कि विविध धर्मोंका यथार्थ रूप फिरसे प्रगट हो। इसलिये तेरे हृदयमें भी इनके जाननेकी इच्छा उत्पन्न हुई। यह बड़ी शुभ इच्छा है और स्व और परका कल्याण करनेवाली है।

मैंने कहा:—माताजी! आपके वचनोंने सूर्य उदयका काम किया। जिस प्रकार सूर्य देवताके उदय होनेसे अंधकार एकदम सर्वथा नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आपके वचनोंके प्रतापसे मेरे हृदयका अंधकार सब नष्ट हो गया। वास्तवमें अब वह समय आ गया है कि धर्मोंके पारस्परिक विरोध नष्ट हो जायें। भविष्य के हालको तो आप ही जान सकती हैं परन्तु जब आपकी इतनी कृपादृष्टि आज हुई है तो विदित होता है कि अवश्य ही मनुष्य जातिकी शुभ गति शीघ्र आनेवाली है। अब कृपा करके गोवध की कुरीतिके प्रारम्भ और उसके वास्तविक भाव पर भी प्रकाश डालिये ताकि इस पापमयी क्रियाद्वारा जो अन्याय व विरोध संसारमें बढ़ रहे हैं, वह बंद हो जायें।

माताने उत्तर दिया:—गायके बलिदानकी कुप्रथा बहुत
दिन हुये अर्थात् लगभग १८-२० लाख वर्ष हुये पशुवधके
सिलसिलेमें इसी भारतदेशमें प्रारम्भ हुई थी। इसका पूरा पूरा
वर्णन अब हिन्दूधर्मके शास्त्रोंमें नहीं मिलता है। परन्तु महाभारत
के शान्तिपर्वके ३३६वें अध्यायमें इतना स्पष्ट लिखा है कि एक दफ़ा
कुछ देवोंने उत्तम ऋषि ब्राह्मणोंसे कहा कि यज्ञमें बकरोंका
बलिदान चढ़ाना चाहिये और यह भी कहा कि शब्द 'अज'का अर्थ
बकरा लगाना चाहिये। ऋषियोंने इसका उत्तर इस भांति दिया
कि "वैदिक श्रुति यही घोषणा करती है कि यज्ञ केवल बीजों
(अनाज) द्वारा ही किया जाता है, इन्हीं को 'अज' कहते हैं।
बकरोंका वध करना तुमको उचित नहीं है। ऐ देवताओ! वह
धर्म भले और सदाचारी पुरुषोंका नहीं हो सकता जिसमें पशु-
वध बताया जावे। अब यह कृतयुगका काल है। इस सत्य-
युगके कालमें पशुओंका बलिदान कैसे हो सकता है?" जब यह
विवाद ऋषि और देवताओंमें हो रहा था उस समय राजा वसु
वहां पर अकस्मात् आ निकले और उनको दोनों पक्षोंने अर्थात्
देवताओं और ऋषियोंने इस बातके निर्णयके लिये अपनी ओर
से पंच मुक़र्रर कर दिया। राजा वसुने अन्याययुक्त हो कर
देवताओंका पक्षपात किया और शब्द "अज"-का अर्थ बकरा
ही बतलाया। इस पर ऋषियोंको क्रोध आया और उन्होंने
वसुको शाप दिया जिससे वह पृथ्वीमें धंस गया। इसी शान्ति
पर्वके ३३६वें अध्यायमें लिखा है कि वसुने एक समय अश्वमेध

यज्ञ किया और उसमें किसी प्राणीका वध नहीं किया था वरन् यज्ञकी समस्त सामिग्री जंगली उपजकी थी। अतः यह स्पष्ट है कि प्रारम्भमें यज्ञ विना पशुवधके होते थे। पश्चातको पशु वध की कुप्रथा चल पड़ी। जैनमतके पुराणोंमें भी इस कुप्रथाके चलनेका वर्णन आया है:—

एक समय राजा वसुके राजमें, जिसको बहुत काल व्यतीत हुआ, एक व्यक्ति नारद और उसके गुरु भाई परवतमें 'अज' शब्दके अर्थ पर जिसका प्रयोग देव-पूजामें होता था, विवाद हुआ। इस शब्दके वर्तमान समयमें दो अर्थ हैं, एक तो तीन वर्ष के पुराने धान जिनमें अँखुआ (अंकुर) नहीं निकल सक्ता है और दूसरा 'बकरा'। पर्वतने इस बात पर जोर दिया कि इस शब्दका अर्थ बकरा ही है, मगर नारदने पुराने अर्थकी पुष्टि की। सर्व जनताकी सम्मति, सनातन रीति और प्रतिवादीकी युक्तियों से पर्वतकी पराजय हुई, मगर उसने राजाके समक्ष इस घटना को उपस्थित किया, जो स्वयम् उसके पिताका शिष्य था। राजा की सम्मति परवतके अनुकूल प्राप्त करनेके हेतु परवतकी माँ छिप कर महलोंमें गई और उससे अपने पतिकी गुरुदक्षिणा मांगी और इस बातकी इच्छुक हुई कि मुंह-मांगा वर पावे। वसुने, जिसको इस बातका क्या अनुमान हो सक्ता था कि उससे क्या मांगा जायगा, अपना बचन दे दिया। तब परवतकी मांने उसको बतलाया कि वह परवतके अनुकूल निर्णय करे और यद्यपि वसुने अपनी प्रतिज्ञासे हटनेका प्रयत्न किया। परन्तु

रोका और प्रतिज्ञासे न
परवतकी मांने उसको ऐसा करनेसे
हटने दिया। दूसरे दिन मामला राजाके समक्ष उपस्थित हुआ
जिसने अपनी सम्मति परवतके अनुकूल दी। इस पर वसु
मार डाला गया और परवत राजधानीसे दुर्गतिके साथ निकाल
दिया गया। परन्तु उसने अपनी शक्तिभर अपनी शिक्षाके फैलाने
का प्रण कर लिया। परवत अभी सोच रहा था कि उसको क्या
करना चाहिये कि इतनेमें एक पिशाच पातालसे ब्राह्मण ऋषिका
भेष बना कर उसके पास आया। यह पिशाच. जिसने अपना
शांडिल्यके तौर पर परवतको परिचय दिया अपने पूर्व जन्ममें
मधुपिंगल नामी राजकुमार हुआ था जो अपने वैरी (रकीब)
द्वारा धोखा खा कर अपनी भावी स्त्रीसे वञ्चित रक्खा गया था।
इसका विवरण यों है कि मधुपिंगलको राजकुमारी सुलसाके
स्वयम्वरमें वरमाला द्वारा स्वीकार किये जानेका पूरा मौका था।
क्योंकि उसकी मांने उसको पहिले निजीतौरसे स्वीकार
कर लिया था। उसके रकीब सगरको इस गुप्त प्रबन्धका समा-
चार विदित हो गया और उसने सुलसाके प्रेममें अन्धा हो कर
अपने मंत्रीसे इस बातकी इच्छा प्रगट की कि वह कोई यत्न राज-
कुमारीकी प्राप्तिका करे। इस दुष्ट मंत्रीने एक बनावटी सामु-
द्रिक शास्त्र रचा और उसको गुप्त रीतिसे स्वयम्वर मण्डपके
नीचे गाड़ दिया और जब स्वयम्वरमें आये हुये राजकुमारोंने
अपने अपने आसन ग्रहण कर लिये तो उसने छलपूर्वक
ज्योतिषद्वारा एक प्राचीन शास्त्रका स्वयम्वरके मण्डपके नीचे गड़ा

यज्ञ किया और उसमें किसी प्राणीका वध नहीं किया था वरन् यज्ञकी समस्त सामिग्री जंगली उपजकी थी। अतः यह स्पष्ट है कि प्रारम्भमें यज्ञ विना पशुवधके होते थे। पश्चातको पशु वध की कुप्रथा चल पड़ी। जैनमतके पुराणोंमें भी इस कुप्रथाके चलनेका वर्णन आया है:—

एक समय राजा वसुके राजमें, जिसको वहुत काल व्यतीत हुआ, एक व्यक्ति नारद और उसके गुरु भाई परवतमें 'अज' शब्दके अर्थ पर जिसका प्रयोग देव-पूजामें होता था, विवाद हुआ। इस शब्दके वर्तमान समयमें दो अर्थ हैं, एक तो तीन वर्ष के पुराने धान जिनमें अँखुआ (अंकुर) नहीं निकल सक्ता है और दूसरा 'वकरा'। पर्वतने इस वात पर जोर दिया कि इस शब्दका अर्थ वकरा ही है, मगर नारदने पुराने अर्थकी पुष्टि की। सर्व जनताकी सम्मति, सनातन रीति और प्रतिवादीकी युक्तियों से पर्वतकी पराजय हुई, मगर उसने राजाके समक्ष इस घटना को उपस्थित किया, जो स्वयम् उसके पिताका शिष्य था। राजा की सम्मति परवतके अनुकूल प्राप्त करनेके हेतु परवतकी माँ छिप कर महलोंमें गई और उससे अपने पतिकी गुरुदक्षिणा मांगी और इस बातकी इच्छुक हुई कि मुंह-मांगा वर पावे। वसुने, जिसको इस बातका क्या अनुमान हो सक्ता था कि उससे क्या मांगा जायगा, अपना वचन दे दिया। तव परवतकी मांने उसको वतलाया कि वह परवतके अनुकूल निर्णय करे और यद्यपि वसुने अपनी प्रतिज्ञासे हटनेका प्रयत्न किया। परन्तु

परवतकी मांने उसको ऐसा करनेसे रोका और प्रतिज्ञासे न हटने दिया। दूसरे दिन मामला राजाके समक्ष उपस्थित हुआ जिसने अपनी सम्मति परवतके अनुकूल दी। इस पर वसु मार डाला गया और परवत राजधानीसे दुर्गतिके साथ निकाल दिया गया। परन्तु उसने अपनी शक्तिभर अपनी शिक्षाके फैलाने का प्रण कर लिया। परवत अभी सोच रहा था कि उसको क्या करना चाहिये कि इतनेमें एक पिशाच पातालसे ब्राह्मण ऋषिका भेष बना कर उसके पास आया। यह पिशाच. जिसने अपना शांडिल्यके तौर पर परवतको परिचय दिया अपने पूर्व जन्ममें मधुपिंगल नामी राजकुमार हुआ था जो अपने वैरी (सगोद) द्वारा धोखा खा कर अपनी भावी स्त्रीसे वञ्चित रक्खा गया था। इसका विवरण यों है कि मधुपिंगलको राजकुमारी सुलसाके स्वयम्बरमें वरमाला द्वारा स्वीकार किये जानेका पूरा मौका था। क्योंकि उसकी मांने उसको पहिले निजीतौरसे स्वीकार कर लिया था। उसके रकीब सगरको इस गुप्त प्रबन्धका समाचार विदित हो गया और उसने सुलसाके प्रेममें अन्धा हो कर अपने मंत्रीसे इस बातकी इच्छा प्रगट की कि वह कोई यत्न राजकुमारीकी प्राप्तिका करे। इस दुष्ट मंत्रीने एक बनावटी सामुद्रिक शास्त्र रचा और उसको गुप्त रीतिसे स्वयम्वर मण्डपके नीचे गाड़ दिया और जब स्वयम्वरमें आये हुये राजकुमारोंने अपने अपने आसन ग्रहण कर लिये तो उसने छलपूर्वक ज्योतिषद्वारा एक प्राचीन शास्त्रका स्वयम्वरके मण्डपके नीचे गड़ा

यज्ञ किया और उसमें किसी प्राणीका वध नहीं किया था वरन् यज्ञकी समस्त सामिग्री जंगली उपजकी थी। अतः यह स्पष्ट है कि प्रारम्भमें यज्ञ विना पशुवधके होते थे। पश्चातको पशु वध की कुप्रथा चल पड़ी। जैनमतके पुराणोंमें भी इस कुप्रथाके चलनेका वर्णन आया है:—

एक समय राजा वसुके राजमें, जिसको बहुत काल व्यतीत हुआ, एक व्यक्ति नारद और उसके गुरु भाई परवतमें 'अज' शब्दके अर्थ पर जिसका प्रयोग देव-पूजामें होता था, विवाद हुआ। इस शब्दके वर्तमान समयमें दो अर्थ हैं, एक तो तीन वर्ष के पुराने धान जिनमें अँखुआ (अंकुर) नहीं निकल सक्ता है और दूसरा 'वकरा'। पर्वतने इस वात पर जोर दिया कि इस शब्दका अर्थ वकरा ही है, मगर नारदने पुराने अर्थकी पुष्टि की। सर्व जनताकी सम्मति, सनातन रीति और प्रतिवादीकी युक्तियों से पर्वतकी पराजय हुई, मगर उसने राजाके समक्ष इस घटना को उपस्थित किया, जो स्वयम् उसके पिताका शिष्य था। राजा की सम्मति परवतके अनुकूल प्राप्त करनेके हेतु परवतकी माँ छिप कर महलोंमें गई और उससे अपने पतिकी गुरुदक्षिणा मांगी और इस बातकी इच्छुक हुई कि मुंह-मांगा वर पावे। वसुने, जिसको इस वातका क्या अनुमान हो सक्ता था कि उससे क्या मांगा जायगा, अपना वचन दे दिया। तव परवतकी मांने उसको वतलाया कि वह परवतके अनुकूल निर्णय करे और यद्यपि वसुने अपनी प्रतिज्ञासे हटनेका प्रयत्न किया। परन्तु

परवतकी मांने उसको ऐसा करनेसे रोका और प्रतिज्ञासे न हटने दिया। दूसरे दिन मामला राजाके समक्ष उपस्थित हुआ जिसने अपनी सम्मति परवतके अनुकूल दी। इस पर वसु मार डाला गया और परवत/राजधानीसे दुर्गतिके साथ निकाल दिया गया। परन्तु उसने अपनी शक्तिभर अपनी शिक्षाके फैलाने का प्रण कर लिया। परवत अभी सोच रहा था कि उसको क्या करना चाहिये कि इतनेमें एक पिशाच पातालसे ब्राह्मण ऋषिका भेष बना कर उसके पास आया। यह पिशाच, जिसने अपना शांडिल्यके तौर पर परवतको परिचय दिया अपने पूर्व जन्ममें मधुपिंगल नामी राजकुमार हुआ था जो अपने वैरी (रकीब) द्वारा धोखा खा कर अपनी भावी स्त्रीसे वञ्चित रक्खा गया था। इसका विवरण यों है कि मधुपिंगलको राजकुमारी सुलसाके स्वयम्वरमें वरमाला द्वारा स्वीकार किये जानेका पूरा मौका था। क्योंकि उसकी मांने उसको पहिले निजीतौरसे स्वीकार कर लिया था। उसके रकीब सगरको इस गुप्त प्रबन्धका समाचार विदित हो गया और उसने सुलसाके प्रेममें अन्धा हो कर अपने मंत्रीसे इस बातकी इच्छा प्रगट की कि वह कोई यत्न राजकुमारीकी प्राप्तिका करे। इस दुष्ट मंत्रीने एक बनावटी सामुद्रिक शास्त्र रचा और उसको गुप्त रीतिसे स्वयम्वर मण्डपके नीचे गाड़ दिया और जब स्वयम्वरमें आये हुये राजकुमारोंने अपने अपने आसन ग्रहण कर लिये तो उसने छलपूर्वक ज्योतिषद्वारा एक प्राचीन शास्त्रका स्वयम्वरके मण्डपके नीचे गड़ा

होना बतलाया। क़िस्सा मुख़्तसर जाली दस्तावेज़ खोद कर निकाला गया और सभाने मंत्रीजीसे ही उसके बांचनेका अनुरोध किया। उसने शास्त्र पढ़ना आरंभ किया और शीघ्र ही आंखोंके वर्णन पर आया जिसके कारण मधुपिंगल विशेषतया प्रसिद्ध था। बड़े हर्षसहित मधुपिंगलके उस शत्रुने बनावटी सामुद्रिक शास्त्रके एक एक शब्दको, जिसमें मधुपिंगलके ऐसी आंखोंकी बुराई की गई थी, ज़ोर दे दे कर पढ़ा, कि वह दुर्भाग्यकी सूचक होती हैं और उनका स्वामी कर्महीन, अभागी, मित्र और कुटु-म्बियोंके लिये अशुभ है। बेचारे मधुपिंगलके आंसू निकल आये और वह सभामेंसे उठ गया। इस कपट क्रियाके द्वारा परास्त, दुःखित और लज्जित हो कर उसने अपने कपड़े फाड़ डाले और संसारको त्याग सन्यासीका जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। इस समय सुलसाने स्वयम्वरमें प्रवेश किया और सगरको अपना पति स्वीकार किया। इसके कुछ काल पश्चात् मधुपिंगलने एक सामुद्रिकके जानकारसे सुना कि उसके साथ छल किया गया और धोखा हुआ तथा अन्याययुक्त विधियोंसे उसकी भावीस्त्रीसे उसको पृथक् किया गया। उसने उसी क्रोधकी दशामें जो धोखेके हालके खुल जानेसे उत्पन्न हुआ था, अपने प्राण तज दिये। मर कर वह पातालमें पिशाच योनिमें उत्पन्न हुआ जहां उसको अपने पूर्व-जन्मके धोखा खानेका तत्काल बोध हो गया और वह वहांसे अपने शत्रुओं से बदला लेनेको चला। वह तुरन्त मनुष्योंके देशमें आया और

परवतसे उस समय उसका समागम हुआ जब कि वह वसुके राज्यसे निकाला गया था और सोच विचारमें था कि वह 'अज' शब्दके अपने (नवीन) अर्थको किस प्रकार संसारमें फैलावे। उसने परवतको अपने शत्रुसे बदला लेनेमें योग्य और प्रस्तुत सहायक जान कर उसके दुष्ट कार्यकी पूर्तिमें सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की। मनुष्य और पिशाचकी इस अशुभ प्रतिज्ञाके अनुसार यह निश्चय हुआ कि परवत सगरके नगरको जाय जहां पर महाकाल (यह उस पिशाचका वास्तविक नाम था) सब प्रकारके ज्वर (रोग) और मरी फैलायेगा जो परवतके उपायोंसे दूर हो जायेंगी ताकि इस प्रकार परवतकी प्रतिष्ठा वहांके लोगोंकी दृष्टि में हो जाय जिनमें वह अपने भावोंका प्रचार करना चाहता था। पिशाचने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और परवतने समस्त प्राणियों को बुरे बुरे रोगोंमें ग्रसित पाया जिनका वह मंत्रोंद्वारा सफलता-पूर्वक इलाज करने लगा। परन्तु इस अभागे राज्यमें हर रोग के स्थान पर जो अच्छा हो जाता था, दो नये और रोग उत्पन्न हो जाते थे। यहां तक कि लोगोंको इस बातका विश्वास हो गया कि उन पर देवताओंका कोप है और उन्होंने पर्वतसे, जिसको वह अपना मुख्य रक्षक समझने लगे थे, इस बारेमें सम्मति ली। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हो गया और अन्तमें यह विचारा गया कि अब बलिदानकी नवीन प्रथाके आरम्भकेलिये समय अनुकूल है। आरम्भ कालमें प्राणियोंको बलिदानका घोर विरोध हुआ, परन्तु बहुत काल तक झेले हुये असह्य

दुःखों और परवतकी अतुल प्रतिष्ठाने जो पूजाके दर्जे तक पहुंच गई थी, और मुख्यतः उस श्रद्धाने जो उसकी अद्भुत शक्तिके कारण लोगोंमें उत्पन्न हो गई थी और जो वास्तवमें उसकी कार्य सफलताके अनुभव पर निर्धारित थी, मन्दसाहसवाले हृदयों को उसकी आज्ञा पालनेके लिये प्रस्तुत कर दिया। सवसे पहिले मांस वाज़ वाज़ रोगोंमें दवाईके तौर पर दिया गया और वह कभी आशाजनक परिणामके उत्पन्न करनेमें निष्फल नहीं हुआ। जिस वातको परवत वाद विवादसे सावित नहीं कर पाया था उसीको वह अपने पिशाच मित्रकी सहायतासे युक्तिद्वारा सावित करनेमें फलीभूत हुआ। धीरे धीरे उसके शिष्योंकी संख्या वरावर वढ़ती गई। यहां तक कि परवतके इस वातके विश्वास दिलाने पर कि वलिसे पशुको कष्ट नहीं होता है वरन् वह सीधा स्वर्गको पहुंच जाता है, "अज" मेध (यज्ञ) किया गया। यहां भी महाकालकी शक्तियों पर भरोसा किया गया था जो कार्य-हीन नहीं हुई। क्योंकि ज्योंही वलि पशुने 'पवित्र' छुरीके नीचे तड़पना व कराहना आरम्भ किया, त्योंहीं महाकालने अपनी माया शक्तिसे एक विमानमें एक वकरेको हर्पित वा प्रसन्न स्वर्ग की ओर जाते हुये वनाकर दिखा दिया। सगरके राज्यके वुद्धिभ्रष्ट लोगोंको विश्वास दिलानेके लिये अव किसी चीज़की आवश्यक्ता नहीं रह गई। अजमेधके पश्चात् गोमेध हुआ, गोमेधके वाद अश्वमेध और अन्ततः पुरुष मेध भी वड़े समारोह के साथ मनाया गया जिनमेंसे हरएकने अपना आशाजनक

फल दिखलाया। हर यज्ञमें बली-पशु या मनुष्यको स्वर्ग जाते हुये भी दिखलाया गया। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया लोगोंके हृदयोंसे मांसभक्षण व जीवहिंसाकी घृणा जो उनमें प्रारम्भिक अवस्थामें थी निकलती गई, यहाँ तक कि अन्तमें बलिदान बलि-प्राणीके लिये स्वर्गका निकटस्थ मार्ग माना जाने लगा। इस प्रथाकी एक व्याख्या वास्तवमें बलिदानके शास्त्रोंमें जो उस समयमें रचे गये थे, कर दी गई और लोगोंके दिलोंमें इन रीतियोंके लिये इतनी श्रद्धा हो गई कि बहुतसे आदमी हर्ष-पूर्वक यह विश्वास करके कि वे इस प्रकार तुरन्त स्वर्ग पहुंच जायेंगे, स्वयं अपनी बलि चढ़ानेके लिये तत्पर हो गये। अंतमें सुलसा और उसका कपटी चाहनेवाला सगर भी देवताओंके प्रसन्नार्थ अपना अपना बलिदान कराने आये और यज्ञकी वेदी पर काट डालेगये।

पिशाचका प्रण अब पूर्ण हो गया; उसने अपना बदला ले लिया और पाताल लोकको चला गया। उसके चले जानेसे बलिदानका बनावटी प्रभाव बहुत कुछ जाता रहा। परन्तु चूंकि वह अपने साथ वबाओं और महामारियोंको भी लेता गया, इस कारण वश उसकी ओर प्रारम्भमें लोगोंका ध्यान नहीं गया। नवीन रचे गये वाक्यके "कि बलि-प्राणी सीधा स्वर्गको पहुंच जाता है" अप्रमाणित होनेको अब लोग इस प्रकार समझाने लगे कि यह पवित्र मन्त्रोंके उच्चारण या शुद्ध अनुवाचनमें जो बलिदानके समय पढ़े जाते थे, किसी त्रुटिके रहजानेके कारण

से अथवा किसी प्रकारके किसी और कारणसे है। इसी बीचमें यज्ञ करानेवाले होताओंके निमित्त यज्ञकी पूरी विधि भी तैय्यार करली गई थी और आचारिक पद्धतिका एक सम्पूर्ण नीति शास्त्र भी तय्यार हो गया जिसमें छोटे २ नियमों पर भी अच्छी तरहसे विचार किया गया था। अनुमानतः प्राचीन (ऋग्वेदके) समयके कुछ मंत्रोंमें भी पर्वत और उसके मातहत शिष्योंके अनुसार परिवर्तन कर दिया गया था। सगरकी राजधानीसे बढ़कर यह नई शिक्षा दूरतक फैल गई और पिशाच के अपने निवास स्थानको प्रस्थान करनेके पश्चात् भी होताओं की शक्तियां, जो उनको मिस्मरेज़म, योग विद्या इत्यादिके अभ्याससे जिनमें मालूम होता है कि उनको भली प्रकार प्रवेश कराया गया था, प्राप्त हुई थी, लोगोंको पर्वतके दुष्ट मतकी ओर आकर्षण करनेमें पर्याप्त रहीं।

माताने कहा:—ऐसा वर्णन है जो जैन और हिन्दू मतों के पुराणोंमें पशु वधके आरम्भका मिलता है। इसमें संदेह नहीं है कि एक समयमें यह बहुत दूर देशों तक फैल गया था और म्लेच्छ देशके वासियोंने भी इसको स्वीकार करलिया था इसी कारणसे पश्चातको यह कभी पूर्णतया बन्द नहीं होसका यद्यपि अधिक बुद्धिवाले मनुष्य शीघ्र इस बातको जान गये थे कि बलिदान का प्रभाव वास्तविक नहीं वरन असत्य है और उन्होंने इस बातको निश्चित कर लिया कि रक्तका बहाना अपनी या बलि प्राणीकी मुक्तिका कारण कभी नहीं हो सक्ता।

परन्तु इस प्रथाकी जड़ें दूर दूर तक फैल गई थीं और एकदम नष्ट नहीं हो सकती थीं। यह बहुत समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् हुआ कि बलिदानकी प्रथाके विरोधमें जो लहर उठी थी उसमें इतनी शक्ति पैदा हो गई कि सुधारका काम कर सके। इस निमित्तसे चिन्हाश्रित यानी भावार्थका आधार यज्ञ शास्त्रों के अर्थके बदलनेके हेतु ढूंढ़ा गया, और मुख्य जातिके बलि पशुओंके लक्षणों और उनके नामों और युक्तिक भावोंके गुप्तार्थ कायम करनेके लिये प्रयोग किया गया। इस प्रकार मेढ़ा, बकरा सांड़, जो बलि पशुओंमें तीन मुख्य जातिके जीव हैं, आत्माकी कुछ घातक शक्तियोंके, जिनका नाश करना आत्मिक शुद्धताकी वृद्धि व मोक्षके हेतु आवश्यकीय है, चिन्ह ठहराये गये। यह युक्ति सफल हुई, क्योंकि एक ओर तो इसने यज्ञकी विधिको ईश्वरीय वाक्य की भांति अखण्डित छोड़ा और दूसरी ओर बलिदानकी अमानुषिक प्रथाको बन्द करदिया और मनुष्योंके विचारोंको इस विषयमें सत्यमार्गकी ओर लगा दिया। परन्तु पापके बीजमें, जो बोया गया था इतनी अधिक फूट कर फैलनेकी शक्ति थी कि वह बलिदान सिद्धान्तके भावार्थके बदल जानेसे पूर्णरूपसे नष्ट न हो सकी। क्योंकि तमाम गुप्त शिक्षावाले, अर्थात् अलंकारयुक्त मतोंने, बलिके खून द्वारा स्वर्गमें जा पहुंचनेकी नवीन प्रथाको स्वीकार कर लिया था और वह सहजमें ही एक ऐसी रीतिके छोड़नेके लिये, जिसमें उनके प्रिय भोजन अर्थात् पशुओंका मांस खानेकी करीब करीब

साफ़तौरसे आज्ञा थी, प्रस्तुत नहीं किये जा सके।
यहूदियोंके मतमें भी ऐसा ही परिवर्तन एक समयमें हुआ
जैसा हिन्दूधर्ममें हुआ। सैमवल–१ अध्याय १५ आयात २२में
लिखा है:—

"क्या खुदावन्दको सोखतनी कुरबानियों और ज़बीहोंमें
उतनी ही खुशी होती है जितनी कि खुदावन्दकी आवाज़की
सुनवाईमें ? देख! आज्ञा पालन करना बलिदान करनेसे
अच्छा है और सुनवा होना मेढ़ोंकी चर्बीसे।"

यह एक प्रचलित रीतिका प्रबल खण्डन है। शास्त्रके
भावार्थको बदलनेका प्रयत्न इस वाक्यसे स्पष्ट हो जाता है:—

'मैं तेरे घरसे कोई बैल नहीं लूंगा और न तेरे वाड़ेमें
से बकरा........अगर मैं भूखा होता तो तुझसे न कहता
.........क्या मैं बैलोंका मांस खाऊँगा और बकरोंका खून
पिऊँगा ? ईश्वरको धन्यवाद दे और अपने प्रणोंको
परमात्माके समक्ष पूरा कर।"*

जरेमिया नबीकी किताब इस विचारकी और पुष्टि करती
है और इस प्रकार ईश्वरीय वाक्य बतलाती है:—

.........मैंने तुम्हारे पुरुषाओंको नहीं कहा, न उनको
आज्ञा दी........ भूनी हुई बलि और ज़बीहोंके लिये, परन्तु
इस बातकी मैं ने उनको आज्ञा दी कि मेरी बातको सुनो

* ज़बूर ५० आयात ९–१५।

........और तुम उन सब रीतियों पर चलो जो कि मैं ने तुमको बतलाई हैं ताकि तुम्हारे लिये लाभदायक हो"†

माताने कहाः—इसप्रकार इस कुरीतिका प्रारम्भ हुआ यह महान दुखकारी और कष्टदायक है और मनुष्यको बजाय मोक्ष या पुण्यके लाभके नर्कगामी बनाती है।

मैंने कहाः—पूज्य माताजी! आपकी कृपासे इस बुरी प्रथा के प्रारम्भको मैं भली प्रकार समझ गया। आपके वचनों द्वारा स्वयं मेरे हृदयमें इस बातकी विवेचना हो गई कि क्यों हिन्दुओंमें मांस आहारी और मांससे घृणा करनेवाले पुरुषोंमें भेद नहीं समझा गया। अब यह बात भी स्पष्टतया मेरी समझमें आगई कि क्यों शब्दार्थमें कतिपय वेदवाक्य पशु और पुरुष बलिदानका प्रचार करते हैं और क्यों गोवध अब सत्य हिन्दू हार्दिक वृत्तिको अरुचिकर और घृणास्पद है।

माताजीने कहाः—तेरा कहना सत्य है वास्तवमें:—

(१) शब्दार्थमें वेद पशु व पुरुष बलिदानका प्रचार करते हैं।

(२) हिन्दू लोग अब गऊ और मनुष्यके बलिदानके सख्त विरोधी हैं यद्यपि ये दोनों शास्त्रोंमें गोमेध व पुरुषमेधके नामोंसे प्रसिद्ध

(३) अश्वमेध करीब २ अब बिल्कुल बन्द हो गया है केवल अजमेधके बजाय कुछ मनुष्य नासमझीसे देवताओंके प्रसन्नार्थ बकरेका मांस भेंट चढ़ाते हैं।

---

† जरेमियानबीकी किताब अध्याय ७ आयात २१ ता २३।

(४) अब विशेष करके बुद्धिमान लोग यज्ञसम्बन्धी मन्त्रोंका भाव शब्दार्थके बजाय भावार्थमें ही लगाते हैं। इनमें से पहिले अश्वमेधका भाव सुन जो बृहद् आरण्यक उपनिषद्के प्रारम्भमें दिया हुआ है:—

"ओश्म्! प्रातःकाल वास्तवमें यज्ञके अश्वका सिर है; सूर्य्य उसका नेत्र है, वायु उसकी श्वांस हैं; उसका मुख सर्वव्यापी अग्नि है; कर्ण बलिदानके घोड़ेका शरीर है; स्वर्गलोक उसकी पीठ आकाश उसका उदर और पृथ्वी उसके पांव रखनेकी चौकी है। ध्रुव (Poles) उसके कटिभाग हैं, पृथ्वीका मध्य भाग उसकी पसुलियां हैं, ऋतुयें उसके अवयव हैं, महीना और पक्ष उसके जोड़ हैं, दिन और रात उसके पांव हैं; तारे उसकी हड्डियां हैं; और मेघ उसका मांस हैं। रेगिस्तान उसके भोज्य हैं जिनको वह खाता है; नदियां उसकी अंतड़ियां हैं; पहाड़ उसके जिगर और फेफड़े हैं; वृक्ष और पौधे उसके केश हैं; सूर्य्य उदय उसके अगाड़ीके भाग हैं और सूर्य्यास्त उसके पीछेके भाग हैं, जब वह जमुहाई लेता है तो विजली होती है; जब वह हिनहिनाता है तो वह गर्जता है; जब वह मूतता है तो वह वरसता है; उसका स्वर वाणी है, दिन वास्तवमें उसके सामने रखे हुये यज्ञके वरतनकी भांति हैं, उसका पलना पूर्वी समुद्रमें है, रात वास्तवमें उसके पीछे रक्खा हुआ वर्तन है, उसका पलना पश्चिमी समुद्रमें है, यह दोनों यज्ञ

के वर्तन घोड़ेके गिर्द (इधर उधर) रहते हैं; घुड़दौड़के अश्वके तौर पर वह देवताओंका वाहन है; युद्धके घोड़ेकी भांति वह गंधर्वोंकी सवारी है; तुरंगके सदृश वह असुरोंके लिये है; और साधारण घोड़ेके समान मनुष्योंके लिये है। समुद्र उसका साथी है, समुद्र उसका पलना है।"

यहां संसार बलिदानके घोड़ेके स्थानमें पाया जाता है, इस का यही भाव है कि योगीको संसारका त्याग कर देना चाहिये। संसार इन्द्रियोंके समूह मनका विषय भोग है और उसका सर्वथा त्याग कर देना मोक्षमार्गमें उन्नति करनेके लिये अति आवश्यक है। मन घोडेकी भांति चंचल है और उसी प्रकार शरीरको इधर उधर खींचे लिये फिरता है जिस प्रकार घोड़ा रथको खींचता है। इसीलिये अश्वमेधका अर्थ समस्त संसार के भोगों और पदार्थोंके त्याग का है। इसी प्रकार और प्रकार के यज्ञोंका अर्थ भी जानना। शतपथ ब्राह्मणमें स्पष्ट बतलाया गया है कि स्वयं मनुष्य ही बलिका पशु है। महाभारतके अश्व-मेध पर्वमें इस कुल गुप्त रहस्यकी व्याख्या पूर्णरूपसे कर दी गई है। वहां यह बता दिया गया है कि दस इन्द्रियां यज्ञ करने वाले हैं इनके विषय समिध् हैं इनका स्वाहा करना बलिदान है चित्तका करना (ध्रवा) है। और इसी पर्वमें यह भी कह दिया गया है:—

"अहिंसा सर्वभूतानामेतत् कृत्यतमं मतम्।
एतत्पदमनुद्विग्नं वरिष्ठं धर्मलक्षणम्॥

हिंसापराश्च ये केचिद्ये च नास्तिकवृत्तयः ।
लोभमोहसमायुक्तास्ते वै निरयगामिनः ॥"

अर्थः—उत्तम धर्मका वास्तविक चिन्ह अहिंसा है। ज्ञान, पापसे बचनेका सर्वोत्तम व सर्वश्रेष्ठ उपाय है। अहिंसा, नास्तिकपन, लोभ इत्यादि नर्कको पहुंचाते हैं।

छान्दोग्य उपनिषद्में भी कहा है कि मोक्षके मुमुक्षुको तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्यवादिताको इन्द्रियनिग्रहके द्वारा प्राप्त करना पड़ता है। और योग दर्शनमें तो अहिंसाको प्रारम्भ ही में पांच नियमोंमें गिना दिया है कि जिसके विना समाधि असम्भव है।

बलिदानका मूलतत्त्व यह है कि उसके विना परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती। कारण कि जब तक यह नीच वाह्य आत्मा मनुष्यके ध्यानमें विराजमान हैं उस समय तक परमात्मापनकी प्राप्ति असम्भव है। इसलिये परमात्मापनको प्रकाशमें लानेके लिये अपने अधमात्मतत्त्वके बलिदानकी आवश्यक्ता है। अज अलंकारकी भाषामें इसी अधमात्मतत्वके मैथुनशक्तिको प्रकट करता है। नरमेध स्वयं अधमात्माका बलिदान है। इसको तू निश्चय करके समझ ले। देख वेदान्तरामायणमें भी लिखा है किः—

त एव ब्राह्मणाः सर्वे गावश्च सत्क्रियाः स्मृताः ।*

* वेदान्तरामायण प्रकाशित लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेसद्वारा, पृष्ट ४७ ।

धर्म भी किसी दशामें अपने यथार्थ भावमें पशुवधके पक्षकार नहीं हो सके। परन्तु आपके मुखारविन्दसे इसकी व्याख्या मैं निश्चयात्मक रूपसे सुनना चाहता हूं।

माताने कहा:—यहूदियोंके मतके कुछ वाक्य अब तुझ को बतायेंगे जिनसे यह पूर्णतया सिद्ध हो जायगा कि वास्तवमें यहूदियोंके मतमें वलिदानका भाव शब्दार्थमें नहीं वरन् गुप्तभाव में लगाना चाहिये।

(१) "क्या मैं बैलोंका मांस खाऊंगा व बकराका रुधिर पिऊंगा; परमात्माको धन्यवाद दे और सर्वोत्कृष्टके समक्ष अपने व्रतोंका पालन कर।"

(२) 'हे प्रभु! मेरे होठोंको खोल दे, तो मुख तेरी स्तुति करेगा।
"कि तू बलिदानसे खुशी नहीं होता, नहीं तो मैं देता। भूनी हुई वलिमें तुझे आनन्द नहीं है।"

(३) "प्रभु कहता है तुम्हारे बलिदानकी अतिसे मुझे कौन काम? मैं मेढ़ोंकी भूनी हुई बलिदानसे और मोटे बछड़ोंकी चरवीसे भरपूर हूं। और बैलों और भेडों और बकरोंका रक्त नहीं चाहता हूं।.........झूठे चढ़ावे मत लावो। लोवानसे मुझे नफरत है, नूतन चन्द्र और

(१) जबूर ५० आयत १३।
(२) ,, ५१ १५-१६।
(३) यशैयाह १।११-१५

सनत और ईदी जमाअतसे भी। मैं ईद और अधर्म दोनोंको सहन नहीं कर सकता हूं। मेरा मन तुम्हारे नूतन चन्द्रमाओं और ईदोंसे क्लेशमय है। वे मुझको भार (के सदृश कष्टकर) हैं। मैं उनको सहन करनेसे थक गया हूं। और जब तुम अपने हाथ फैलाओगे तो मैं तुमसे अपने नेत्र छुपा लूंगा। हां! जब तुम प्रार्थना करोगे तो मैं नहीं सुनूंगा। तुम्हारे हाथ रक्तसे भरे हुये हैं।"

(४) "वह जो बैलको बलिदान करता है ऐसा है जैसे उसने एक मनुष्यको मार डाला। और वह जो एक मेमनेको बलिदान करता है ऐसा है जैसे उसने एक कुत्तेकी गरदन काट डाली हो। जो बलि चढ़ाता है ऐसा है जैसे उसने सुअरका रक्त चढ़ाया हो। हां! उन्होंने अपने अपने मार्ग चुन लिये हैं और उनके हृदय उनके दोषमय दुष्कृत्योंमें संलग्न हैं।"

(५) "मैंने दयाकी इच्छा (आज्ञा) की थी न कि बलिदानकी और परमात्माके ज्ञानका इच्छुक हुआ था, भूनी हुई बलिदानके स्थान पर।"

(६) "किस अर्थके हेतु शेबासे लोबान और एक दूसरा

(४) यशैयाह ६६।३।

(५) होसिया ६।६।

(६) जेरमयाह ६।२०।

देशसे सुगंधित ईख मेरे लिये आते हैं। तुम्हारी भूनी हुई बलिदान मुझे पसंद नहीं है और तुम्हारे यज्ञ मेरे निकट आनन्दमय नहीं हैं।"

(७) "वे मेरे चढ़ावेके लिये मांस बलिदान करते हैं और उसे भक्षण करते हैं। प्रभु उसको स्वीकार नहीं करता, अब वह उनकी बुराई स्मरण करेगा। और उनके अपराधोंका उनको दंड देगा। वे मिश्र (बंधन) को पुनः जायंगे।"

(८) मैं तुम्हारी ईदोंसे घृणा करता हूं और उनसे द्वेष करता हूं और मैं तुम्हारे धार्मिक संघोंकी गन्ध नहीं सूँघूंगा।

"और यदि तुम हरप्रकार भूनी हुई बलि एवं मांस को मेरे लिये अर्पण करो तो मैं उनको स्वीकार न करूंगा। और तुम्हारे मोटे बैलोंके धन्यवाद अर्चनाओं की ओर भी आकर्षित नहीं होऊंगा।"

(९) "अपने बलिदानमें भूनी हुई बलियोंको घुसेड़ दो और मांस खाओ।

"कारण कि जिस दिवस मैं तुम्हारे बाप दादाओंको

---

(७) होशिया ८।१३।

(८) एमोस ५।२१-२२।

(९) जेरेमयाह ७।२१-१३।

(१२) "मैं क्या लेकर प्रभुके समक्षमें आऊँ और परमोत्कृष्ट ईश्वरके आगे क्योंकर दण्डवत् करूँ। क्या भूनी हुई बलियों और एक वर्षके बछड़ोंको ले कर इसके आगे आऊँ? क्या प्रभु सहस्रों मेढ़ोंसे व तेलकी दस सहस्र नदियोंसे प्रसन्न होगा? क्या मैं अपने पहलौटीके पुत्र को अपने पापोंके बदलेमें दूँ—अपने शरीरके फलको अपनी आत्माके अपराधोंके हेतु मैं दे दूँ? "हे मनुष्य! उसने तुझे वह दिखलाया है जो कुछ कि भला है। और प्रभु तुझसे और क्या चाहता है इसके अतिरिक्त कि तू न्याय करे और दयार्द्रचित्त हो प्रेम रक्खे। और अपने परमात्माके साथ नम्रतासे चले।"

यह स्वयं इञ्जीलके प्राचीन अहदनामेकी आयतें हैं। और इनके पढ़नेके पश्चात् मनमें इस विषयमें संशय नहीं रहता है कि बलिदानसम्बन्धी आज्ञाओंका शब्दार्थ लगानेसे बड़ा भारी भ्रम उत्पन्न हुआ है। इञ्जीलके नूतन भागमें इस अभागे भ्रमको दूर किया गया है। "मैं दयाका इच्छुक हूँ न कि बलिदानका" यह नवीन इञ्जीलका प्रेम सूत्र है और इञ्जीलके नवीन भागकी रूमियोंकी चिट्ठीमें पौलस रसूलने अधमात्माके बलिदानको स्पष्ट रीतिसे निश्चय कर दिया है। उसने लिखा है—

"इसलिये हे भाइयो! मैं तुमसे परमात्माकी दयाओंके नाम पर प्रार्थना करता हूँ कि तुम अपने ही शरीरोंका सच्चा,

---

(१२) माईकाह ६।६–८

पवित्र और स्वीकृत होने योग्य बलिदान कर दो। यह
तुम्हारी सच्ची सेवा है।"

पार्सियोंके मतमें भी यही शिक्षा मिलती है। उनके मतकी
पुस्तक शायस्तला शायस्तमें लिखा है कि:—

"नियम यह है कि मांस द्वारा जब कि उसमेंसे दुर्गन्धि
सड़ायँध न भी निकल रही हो, प्रार्थना याचना नहीं करनी
चाहिये।"

अब तूने जो मुसलमानोंके धर्मके बारेमें प्रश्न पूछा तो उस-
का हाल भी सुन! इसमें सन्देह नहीं कि मोहम्मद बलिदानके
वास्तविक स्वरूपसे पूर्णतया विज्ञ था परन्तु वह अपने सजातीय
मनुष्योंके क्रोधको प्रज्वलित नहीं करना चाहता था। इसलिये
उसने बलिदानके सिद्धान्तके यथार्थ भावको गुप्तरीत्या बना
कर ही संतोष धारण किया और इस प्रकार खुले तौरसे उस-
का निषेध नहीं किया, जैसा इञ्जीलके नूतन अहदनामेमें किया
गया था। कुरान शरीफके २२वें अध्यायमें लिखा है कि:—

"ऊँटोंकी बलिदान हमने तुम्हारेलिये परमात्माकी
आज्ञाओंको मान्यताका चिन्ह बताया है।......उनका मांस
ईश्वरको स्वीकृत नहीं है। और न उनका रक्त। सुतरां
तुम्हारी धर्मिष्ठता उसको स्वीकृत है।"

भाषाके लिये इससे अधिक स्पष्ट और जोरदार होना
असंभव है, परन्तु खेद है कि अरबवासियोंके हृदय पर इसका
प्रभाव कुछ भी न पड़ा और जैसे इञ्जीलके प्राचीन अहदनामे

के पैगम्बरोंका कलाम यहूदियोंके हृदयमें घर न कर सका वैसे ही हजरत मोहम्मदका कलाम अरेवियोंके हृदयोंको न वदल सका। मनुष्य अपनी नीच प्रवृत्तिमें भी अनोखा ही है। वह विचारता है कि पवित्रसे पवित्र व्यक्ति (परमात्मा) भी होमित पशुओंका मांस खाने और उनका रक्त पान करनेको लालायित होगा।

माताने कहा:—अब तुझे कुरान शरीफ़में वर्णित गऊके बलिदानका अर्थ बताते हैं। ध्यानसे सुन ! इसको एक पहलेकी भांति मोहम्मद साहबने अपने अनुयायियोंको बताया था और इस बातका प्रयत्न किया था कि पहेलिका अपने मर्मकी ओर स्वयं संकेत करे। अब तुझे वही शब्द बताये जाते हैं जो मोहम्मद साहबने कहे थेः—

"और जब मूसाने अपने लोगोंसे कहा कि अल्लाह आज्ञा देता है कि तुम एक गऊ बलि चढ़ाओ तो उन्होंने कहा कि क्या तुम हमसे ठठोली करते हो ?

"मूसाने कहा कि खुदाकी पनाह ! कि मैं मूर्ख बन-जाऊँ।

"उन्होंने कहा हमारे लिये अपने परमात्मासे पूछ कि वह हमारे लिये वर्णन करे कि वह क्या (वस्तु) है ?

"मूसाने कहा कि वह कहता है कि वह एक गऊ है जो न बूढी है न बछिया है उन दोनोंमें बीचकी अवस्था की है। अस्तु, करो वह तुम जिसकी तुमको आज्ञा दी जाती है।

'उन्होंने कहा कि तू अपने प्रभुसे हमारे लिये प्रश्न कर
कि वह कहे कि उसका वर्ण कैसा है ?
"मूसाने कहा वह कहता है कि उसका वर्ण लाल है
अतिलाल है । दर्शकोंके चित्तको उसका वर्ण प्रसन्न
करता है ।
"वे बोले कि दरयाफ्त करो हमारे लिए अपने प्रभुसे कि
वह हमारे लिये वर्णन करे कि वह क्या (वस्तु) है ?
कारण कि गऊयें हमारे निकट सब एक समान हैं और हम
यदि खुदाने चाहा तो अवश्य पथप्रदर्शन पावेंगे ।
"मूसाने उत्तर दिया कि वह कहता है कि वह एक
गऊ है जो न पृथ्वी जोतनेके लिये निकाली गई है,
न खेत सींचनेके लिये । वह नीरोग (पूर्ण) है । उस
में कोई दोष नहीं है ।
"उन्होंने कहा अब तुम ठीक पता लाये । तब उन्होंने
उसको बलि चढ़ाया यद्यपि वह ऐसा न करनेके निकट
थे ।
"और जब तुमने एक मनुष्य (आत्मा)-की हत्या की ।
"और उसकी बाबत आपसमें वाद विवाद किया ।
अल्लाहने उसको प्रकट किया जिसको तुमने छिपाया था ।
कारण कि हमने कहा कि मृत शरीरको बलि दी हुई गाय
के भागसे छुआओ ।

"ऐसे ईश्वरने मृतकको जीवित किया।
"और अपना चिन्ह दिखाता है।
"शायद कि तुम समझो।"

लाल बछियाके बलिदान (कुरबानी) की यह कथा है। और यह वास्तवमें एक अद्भुत वर्णन है, जो उच्च सीमाका प्रवीण रहस्यमय व निपुण है। इसमें मूसा और यहूदी लोगोंका वार्तालाप दिखलाया है। मूसा यहूदियोंका पेशवा और पथ-प्रदर्शक था। अल्लाहकी ओरसे मूसाने यहूदियोंसे कहा कि, उसकी आज्ञा है कि तुम गऊ बलि चढ़ाओ। अब देख! यहूदियोंका उत्तर कितना विचित्र है। वह मूसा और अल्लाह दोनोंसे विज्ञ हैं और स्थूल रूपमें उनके शास्त्रोंमें भी पशु बलिदानका वर्णन है और यही विश्वास आज कल भी यहूदी, मुसलमान, ईसाई तीनोंका है कि वह लोग वास्तवमें शास्त्रीय आज्ञाके अनुसार पशु बलिदान करते थे, इस पर भी जब मूसाने उनको कहा कि अल्लाहकी आज्ञा है कि गायकी बलि करो तो उन्होंने मूसासे कहा:—

"क्या तुम हमसे ठठोली करते हो।"

इसका भाव यही है कि ऐ मूसा! तू जो गायकी बलिका संदेशा लाया है तो अल्लाह जिसकेलिये तू बलि मांगता है वह तो प्राणियोंका रक्षक दयालु परमात्मा है। वह पशुवध कैसे चाहेगा क्या आज तू ठठोली करने बैठा है? फिर मूसाने कहा—खुदाकी पनाह कि मैं मूर्ख बनजाऊँ। इसका भाव यह है कि मैं

हँसी नहीं करता हूं और न मुझे मूर्ख समझो वल्कि बुद्धिमत्ता द्वारा मेरा कथनका भाव ग्रहण करो। तिस पर भी यहूदियोंने उसके कथनको शब्दार्थमें ग्रहण नहीं किया वरन् उससे यही कहा कि:—

"हमारे लिये अपने परमात्मासे पूंछ कि वह बताये कि वह क्या वस्तु है ? जिसके वलिकी आज्ञा हुई है" अब मूसा और यहूदियोंके उत्तर प्रति उत्तर द्वारा पहेलीका भाव खुलता है। वह गऊ कैसी है यह मूसा वताता है कि—वह बूढी नहीं है न वह वछिया है वल्कि वीचकी अवस्था की है।

अब यहूदियोंने फिर पूंछा कि उसका रंग कैसा है ? मूसाने वतलाया कि उसका वर्ण अतिलाल (शब्दार्थमें पीला) है, दर्शकोंके चित्तको उसका वर्ण प्रसन्न करता है।

फिर अब भी यहूदी पूछते हैं कि वह क्या वस्तु है ? कारण कि गऊयें सब एक समान हैं अर्थात् साधारण गऊसे तो तुम्हारा मतलव है नहीं तो फिर वह कौन असाधारण गऊ है जिसकी वलि वनाते हो। अब मूसा फिर और विवेचना करता है। उस विवेचना द्वारा साधारण गऊ जातिका सम्पूर्ण निषेध कर देता है। जिस गऊकी आवश्यक्ता है वह गऊ है जो न पृथ्वी जोतने के लिये निकाली गई है, न खेत सींचनेके लिये। (गऊ जाति के जितने रोग होते हैं उन सबसे) वह निरोग है। उसमें कोई दोष नहीं है।

जब इतनी वार्तालाप होने पर वक्ता व श्रोताओंका पारस्प-

रिक भ्रम मिटा तब यहूदियोंने कहा कि अब तुम ठीक पता लाये अर्थात् अब पहेलीका अर्थ खुला। अब उन्होंने मूसाकी बुद्धिकी सराहना की।

तब बलिदान किया गया—यहां भी वक्ताने इस बातको उचित समझा कि बलिदानके अर्थको सोमित करे ताकि साधारण भावमें उसको मूर्ख मनुष्य न समझ बैठें। इसलिये उसने यह अति आवश्यक शब्द यहां पर लगा दिये कि "यद्यपि वह ऐसा न करनेके निकट थे।" कुलका कुल जुमला इस भांति है:—

"तब उन्होंने उसको बलि चढाया, यद्यपि वह ऐसा न करनेके निकट थे।"

यह बड़ी विचित्र बात है कि बलि चढ़ाया भी, और यद्यपि वह ऐसा न करनेके निकट थे। यह दोनों बातें कैसी? इसका समाधान इस प्रकार है कि किसी दूसरेके प्राणघातमें तो आसानी और देर का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु जब अपने ही अधमात्माका बलिदान किसीको करना होता है तो अलबत्तः दिक्कत पड़ती है। एक भी वस्तुके लिये किसी मनुष्य से कहा जाय कि इस पदार्थका त्याग कर दो तो देखो कितनी कठिनाई उसे प्रतीत होती है। और धर्मके मार्ग पर समस्त इच्छाओं वांछाओंके पुञ्जको नष्ट करना पड़ता है। इसलिये यहां कुरानके वाक्यमें यह शब्द पाये जाते हैं कि "यद्यपि वह ऐसा न करनेके निकट थे।"

रहस्यमयी लेखनशैलीका एक उम्दा नमूना यहां श्रोतागणोंके सामने उपस्थित है। अन्तमें स्पष्ट कह भी दिया गया है कि यह ईश्वरीय चिन्ह हैं शायद तुम्हारी समझमें आ जावें। अब स्पष्ट शब्दोंमें इनका अर्थ सुनो! अलंकारकी भाषामें मनुष्य (शब्दार्थमें आत्मा)-के मारनेसे भाव स्वात्मज्ञानकी अनभिज्ञता से है। जिसके कारण आत्मा परमात्मापनमें मुर्दा अर्थात् जीवित नहीं रहता है। मुर्देका अर्थ पहिले ही तुझे बताया जा चुका है भाव यह है कि जो लोग अज्ञानतावश आत्माके अस्तित्वसे इन्कार कर देते हैं उन्होंने मानो आत्मघात किया। कारण कि विना स्वात्मअनुभवके परमात्मापनकी प्राप्ति नहीं है। और स्वात्म-अनुभव विना स्वात्मज्ञानके नहीं हो सक्ता। इसी कारण मिथ्यादृष्टी पुद्गलवादियोंको यहां आत्महत्याका दोषी ठहराया हैं। 'तुम' शब्दका अर्थ मिथ्यादृष्टि पुद्गलवादियोंका समझना। वाद-विवादका भी यही भाव है। संक्षेपतः इस मजमूनका अर्थ कि "जब तुमने एक मनुष्य (आत्मा)-की हत्याकी और उसकी वावत वाद-विवाद किया तो अल्लाहने उसे प्रगट किया जिसको तुमने छिपाया था कारण कि हमने कहा कि मृत शरीरको बलि दी हुई गायके भागसे छुआओ ऐसे ईश्वरने मृतक शरीरको जीवित किया" यही है कि जब पुद्गलवादी आत्माके अस्तित्वसे इनकार कर देते हैं तो वाद-विवादमें उनका कायल करना अति कठिन होता है उस समय यदि आत्मसिद्धि का कोई उपाय धर्मके पास न हो तो धर्मकी पराजय और अना-

त्मवादकी विजय हो जाय। जो महा अनर्थ हो। परन्तु धर्म तो सत्य विज्ञान है उसकी पराजय कैसे संभव है? इसलिये वह एक परीक्षा बताता है और प्रतिपक्षियोंसे कहता है कि ऐ अनात्मवादियो! तुम वाद-विवादको छोड़ कर इस एक ही परीक्षा द्वारा स्वयं देखलो कि आत्मा है या नहीं। वह परीक्षा यह है कि इस अपनी नीच इच्छाओंके पुञ्जरूपी अधमात्माका सर्वथा बलिदान करदो तो तत्क्षण वह आत्मा जिसको तुम जीवित नहीं मानते हो स्वयं भड़क कर जीवित होने द्वारा तुमको अपने अस्तित्वका पूर्ण परिचय देगा। बस! केवल एक यही चिन्ह मनुष्योंको आत्मा और उसके असली स्वरूपका बोध करा देने के लिये यथेष्ट है:—"शायद कि तुम समझो।"

माताजीने कहा:—गायके बलिदानका अर्थ अब तुझ को स्पष्ट मालूम हो गया? संस्कृतमें भी गाशब्दका अर्थ इन्द्रियसमूह है। क्योंकि शब्दार्थमें गो वह है जो कि चले, और इन्द्रियां चलायमान होती हैं। इन्हीं चलायमान होनेवाली इन्द्रियों को नष्ट करनेका भाव 'गोमेध' का था। इन्हीं इन्द्रियसमूहको मुसलमान देशोंकी भाषामें नफ्स और इनके मारने अर्थात् इन्द्रियदमनको नफ्सकुशी कहते हैं। इस नफ्सको सूफी कविने कविरचनामें अजदहा बांधा है जिसका मारना मुक्तिप्राप्ति हेतु आवश्यक बताया गया है:—

(१) ता न गरदद नफ्स ताबे रूहरा,
कै दवा याबी दिले मजरूहरा।

(२) मुर्गे़जाँ अज़दहसे तन यावद रिहा,

गरवतेगे लाकुशी ईं अज़दहा ।

अर्थः—(१) जब तक कि नफ़्स अर्थात् इन्द्रियां आत्माके वशमें नहीं होतीं उस समय तक हृदयका आताप संताप दूर नहीं हो सक्ता ।

(२) शरीरके सम्बन्धसे आत्मा मुक्त हो जाय यदि इस अज़्हदे (नफ़्स)-को वैरागकी खड्गसे मार डाला जाय ।

क्या ये बातें तेरी समझमें भली प्रकार आ गई ?

मैंने कहाः—गायके बलिदानका जो विचित्र भाव आपने मुझे सुनाया और समझाया उससे मेरा हृदय अत्यंत संतुष्ट हुआ । परन्तु यह मेरी समझमें नहीं आता कि इस भेदको जानते हुये भी मोहम्मदने बलिदानके नाम पर पशुवध किया । आप परम दयालु हैं, मेरे इस भ्रमको भी दूर कर दीजिये ।

माताने कहा:—यह प्रश्न भी तेरा अति उचित और प्रसंगवत् है । इसका उत्तर धार्मिक इतिहासके जानकारोंके समझमें शीघ्र ही आ जायगा । अलंकारकी भाषाके प्रयोगका यही फल हुआ करता है कि उसके यथार्थ भावके जाननेवाले थोड़े होते हैं; परन्तु उसको शब्दार्थके भावमें समझनेवाले बहुत अधिककी संख्यामें हुआ करते हैं । समयके प्रभावसे यथार्थ भावसे अनभिज्ञ लोग स्वयं भारतवर्ष और अन्य देशोंमें भी लौकिक प्रतिष्ठा व राज्यको प्राप्त हो गये और इनका ज़ोर बँध

गया। बढ़ते २ उनके अज्ञानता और अहंकार इतने प्रवल हो गये कि वह अपने भावोंके अतिरिक्त किसी और विचारोंको सहन न कर सके। इसीलिये ममेज्ञ लोगोंने अपने गुप्त संगठन व संस्थायें वनालीं। गत समयमें यूनान, मिश्र, मेसोपोटेमियां आदि देशोंमें गुप्त संस्थायें वरावर स्थापित रहीं। ऐसी ही गुप्त संस्था फ्री मेसनरी भी हैं जो अव भी प्रचलित हैं। इन गुप्त संस्थाओंमें परीक्षाके पश्चात् गिने चुने मनुष्योंका प्रवेश कराया जाता था और उनको आत्मिक ज्ञान सिखाया जाता था। सर्वसाधारण मनुष्य इस गुप्त आत्मिक विद्याके रहस्यसे अन-भिज्ञ थे। और इस कारण उन्होंने यथार्थ तत्त्वज्ञोंको वहुत दफ़ा कष्ट दिया और उनके प्राणघात भी किये। इन्जीलमें स्पष्ट रीति-से शिक्षा दी गई है "कि मोतियोंको सूअरोंके समक्ष मत फेंको कि वह उनको पांवसे कुचल डालें और उलट कर तुमको मार डालें।" यह लगभग अठारह उन्नीससौ वर्षकी व्याख्या है। मुसलमानोंके समयमें भी कठोरसे कठोर अत्याचार अज्ञानता-वश अनभिज्ञ पुरुषोंके हाथोंसे मुसलमान तत्त्वज्ञों तथा अन्य धर्मावलंबियों पर हुये। मंसूर इसी वात पर शूली पर चढ़ा दिया गया कि उसने आत्माके परमात्मा होनेकी घोषणा जनतामें की थी। स्वयं मोहम्मदकी जीवनी भी यही वतलाती है कि उनको भी अपनी जानका डर था। यदि यह सत्य है कि मोहम्मद सत्य आत्मिक ज्ञानसे बहुत कुछ अंशमें जानकारी रखता था तो भी उसने उस ज्ञानको स्वयं रहस्यवादके मतानुसार ही प्राप्त किया

था। और रहस्यवादकी गुप्त भाषा हीमें उसने अपने मतका प्रचार किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ गिने चुने आदमियोंने तो जो सूफ़ी कहलाते थे और हज़रत मोहम्मदके पास मसजिदकी इर्द-गिर्दकी कोठरियोंमें रहा करते थे, अपने पैग़म्बरकी शिक्षाका गुप्तरहस्य समझ पाया। परन्तु वह सहस्रों लाखों स्त्री व पुरुष जो मर्मज्ञानसे अनभिज्ञ थे और जिनको गुप्तरहस्य मोहम्मदी शिक्षाका नहीं बताया गया उन्होंने तो दीन इस्लामको केवल उसके ज़ाहिरी भेषमें ही ग्रहण किया था। यह अनभिज्ञ लोग बड़े जोशीले और बहादुर थे। उन्होंने दीन इस्लामको यही समझ कर ग्रहण किया था कि एक बाहरी ख़ुदाकी भक्तिद्वारा मनवांछित फलकी प्राप्ति होती है। उनका विश्वास था कि स्वर्गके सुख, हूरोंकी सोहबत इत्यादि उनको केवल उस बाहरी ईश्वरसे बलि पशुओंकी भेटद्वारा प्राप्त हो सकेंगे। उनको न किसीने निजआत्माके स्वरूपको बताया था और न उनको स्वयं कुछ परिचय निज आत्माके स्वरूपका था और न वह उसको साधारणतया मानने पर प्रस्तुत ही होते। उनके समक्ष यह असंभव था कि कोई व्यक्ति प्रगटरूपमें निजात्माका गुणानुवाद गा सके। इनके प्रसन्न रहने ही में इसलामके पैगम्बर का लाभ था। इसलाम और राज्य और जान भी इनके असंतुष्ट व अप्रसन्न हो जानेसे ख़तरेमें पड़ जाते। इसलिये मोहम्मदको प्रत्येक अवसर पर ऐसी क्रिया करनी पड़ी जिससे उनके दिलों में किसी प्रकारका भेद उत्पन्न न हो। और इसीलिये उसको

बलिदानके नाम पर पशुवध भी उन लोगोंके समक्ष करने पड़े। यदि ऐसा न करते तो अवश्य रहस्यवादसे अनभिज्ञ मुसलमान उनसे बिगड़ खड़े होते और जो लौकिक उन्नति इस्लामने की वह कभी नहीं हो पाती। हे पुत्र! यह कारण था जिससे मोहम्मद स्वयं हत्या करने पर बाध्य हुआ।

मैंने कहा:—माताजी! आपको धन्यवाद है कि आपने मेरे इस संदेहको भी दूर कर दिया। अब मुझ पर दयाकी दृष्टि रखिये। मैंने सुना है कि एक अन्य कथा भी इस गायके बलिदानके बारेमें मुसलमानोंके मतमें प्रचलित है। मेरी लालसा है कि आपके मुखारविंदसे उसको अर्थसमेत श्रवण करके तृप्त होऊँ।

माताजीने कहा:—अच्छा! वह कथा भी जो मुसलमानोंके मतमें प्रचलित है हम तुझे सुनाते हैं सुन! पहले कथा श्रवण कर उसके पश्चात् उसका अर्थ भी बतायेंगे।

"एक अमुक पुरुषने अपनी मृत्यु पर अपने पुत्रको जो उस समय बच्चा था, और एक बछियाको, जो उसके बिलूग (सयानपन) प्राप्त करने तक सहरा (बियाबान) में फिरती रही, छोड़ा। जब वह बच्चा बालिग़ (स्याना) हुआ तो उसकी माताने उसको बताया कि वह बछिया उसकी है। और उसको शिक्षा दी कि वह उसको ले (पकड़) कर तीन स्वर्ण मुहरोंके बदलेमें बेच लेवे। जब वह युवक अपनी बछियाको लेकर बाज़ारमें गया तो उसको मनुष्यके

रूपमें एक फ़रिश्ता मिला। और उसने उसकी बछियाके छः स्वर्ण मुहर दाम लगाये। परन्तु उस युवकने इस मूल्य पर बिदून अपनी माताकी आज्ञाके बेचनेसे इन्कार किया। फिर आज्ञा प्राप्त करने पर वह बाज़ारको वापिस गया और फ़रिस्तेसे मिला। परन्तु अब उस फ़रिश्तेने पहिलेसे द्विगुण मूल्य लगाया, इस प्रतिज्ञा पर कि युवक अपनी मातासे उसका ज़िक्र न करे। किन्तु उस युवकने इससे इन्कार किया और अपनी माताको इस अधिक मूल्यका समाचार बताया उस स्त्रीने यह विचार कर कि वह मनुष्य कोई देवता है अपने पुत्रको पुनः उसके निकट भेजा, और इस बातको दर्याफ्त किया कि उस बछियाका क्या करना चाहिये। इसपर उस फ़रिश्तेने उस युवकको बताया कि कुछ समय उपरांत उसको इसराईलके लोग मुँह मांगे दाम देकर मोल ले लेंगे। उसके बहुत थोड़े समयके पश्चात् ऐसा हुआ कि एक इसराईली इस्माईलको उसके एक निकटसम्बंधी-ने मार डाला और उसने यथार्थ घटनाको छिपानेके लिये शरीरको, उस स्थानसे जहां घटना घटित हुई थी एक अति दूरस्थ स्थान पर डाल दिया मृत व्यक्तिके मित्रोंने कुछ अन्य मनुष्यों पर मूसाके समक्ष हत्याका अभियोग लगाया परन्तु उनके इन्कार करने पर और उनको झुठ-लानेके निमित्त साक्षीके न होने पर ईश्वरने आज्ञा दी कि अमुक २ चिन्हों वाली एक गऊका बध किया जावे। किन्तु

अनाथकी गऊके अतिरिक्त अन्य किसी गऊमें वे चिन्ह नहीं पाये गये। और लोगोंको उसकी उतनी गिन्नियां दे कर जितनी उसकी खालमें आ सकीं, मोल लेना पड़ा। कोई कहता है कि उसके बराबर तौल कर सोना देना पड़ा। और कुछ ऐसा कहते हैं कि इससे भी दसगुणा मूल्य दिया गया। इस गऊकी उन्होंने बलि चढ़ाई और ईश्वरकी आज्ञानुसार इसके एक अवयवसे मृतकको छुवाया। जब कि वह जीवित हो उठा, और उसने अपने हत्यारेका नाम बताया। इसके पश्चात् वह पुनः मृतक हो कर गिर पड़ा।"

माताजीने कहाः—यह कथा गऊके बलिदानकी है। इसका भाव बड़ा ही विचित्र और शान्तिप्रद है। जो मनुष्य इसके वास्तविक स्वरूपको एक दफ़ा समझ लेगा और उस पर सच्चे हृदयसे विश्वास करेगा वह अवश्य दो तीन योनियोंमें मोक्ष पा जायगा। यह मनुष्य जातिका दुर्भाग्य है कि इसके द्वारा महान् पाप और हिंसा संसारमें हुये। परन्तु भवितव्यता बड़ी बलवान है और कर्मोंकी गति पर किसीका वश नहीं चलता है। अब तुम्हें हम इस विलक्षण कथाका अर्थ बताते हैं:—

अमुक पुरुषके मरनेका भाव निज आत्माके बोध और उससे सम्बधित परमात्मपदका नष्ट होना है। इस दशामें आत्मा संसारी जीव कहलाता है जो अपने कर्मोंके फलको भोगता एक योनिसे दूसरी योनिमें भ्रमण किया करता है। इस संसारमें कोई शरण ऐसी नहीं है जो इसको कर्मोंके बन्धनसे बचा सके।

इसी अवोध अशरण अवस्थाको कथानकमें आत्माकी बाल अवस्था बांधा है। बछिया इन्द्रियसमूह है। युवा होनेसे अभि-प्राय मनुष्य योनिकी प्राप्तिसे है। बालिग़ (युवा) होनेके समय तक बछिया वियाबानमें चरती रही-इसका अर्थ यह है कि मनुष्य जन्म की प्राप्तिसे पूर्व नीचेकी योनियों अर्थात् एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और मन रहित व मन सहित पंच इन्द्रिय योनियोंमें आत्मा भ्रमण करता रहा। कारण कि मनुष्यको तो कुछ भोग उपभोग की प्राप्ति होती है, परन्तु कीड़े मकड़े आदिकी योनियोंमें भोगोपभोग कहां? वहां घास फूस मिट्टी तिनके कांटे और इसीप्रकारके अन्य पदार्थ ही भक्षण करनेको मिलते हैं।

सयानपनमें माताने बताया कि बछियाको बेच कर तीन मोहरें प्राप्त करनी चाहियें। भावार्थ यह है कि मनुष्य संसारमें अपने पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये धन सम्पत्ति चाहता है। और धन सम्पत्तिके विविध दशाओंकी अपेक्षा तीन माप हैं। पहिली कामना मनुष्यकी यह होती है कि उसके पास इतना वसीला (धन) तो अवश्य हो कि उसका पेट पालन हो सके। यह एक पैमाना है फिर इसके प्राप्त होने पर उसकी यह इच्छा होती है कि केवल पेट पालन ही नहीं बल्कि कुछ गृहस्थीके सुख भी हों। यह दूसरा पैमाना है। जब यह भी प्राप्त हो जाता है तो फिर इच्छा होती है कि अब भोग विलासकी सामिग्री एकत्र हों। यह तीसरा पैमाना है। इन तीन

पैमानोंके अनुसार विविध लोगोंकी इच्छा धन प्राप्तिकी होती
है। स्वर्ण मुहरका भाव उपयुक्त धनसम्पत्ति है। कारण कि स्वर्ण
मुहर उस समयमें एक बहुत बड़ी चीज़ होती थी! माका अर्थ
बुद्धि है । मतलब यह है कि जब मनुष्यमें समझ आती है तो
उसकी बुद्धि उसको यह बताती है कि इष्ट पुरुषार्थ की सिद्धि
के निमित्त तीन प्रकारके धन सम्पत्तिकी आवश्यक्ता होती है
अर्थात् एक केवल पेट पालनेमात्रकी, दूसरी गृहस्थ सुखमें
प्रवेश करने की, तीसरे भोग विलासकी सामग्रीका। और यह
भी उसकी समझ बतलाती है कि इन तीनों ही प्रकारकी सम्प-
त्तियोंकी प्राप्ति केवल एक ही तरहसे सम्भव है अर्थात् इन्द्रियोंके
मारनेसे। यह स्पष्ट है कि चाहे कोई मज़दूरी करे, चाहे कोई
किसी प्रकारका उद्यम करे, चाहे किसी और प्रकारका धन्धा या
रोज़गार व अन्य शासनसम्बन्धी कार्य करे; हर सूरतमें धनके
इच्छुकको अपनी वासनाओं, कामनाओं और वाञ्छाओंको थोड़ा
बहुत मारना ही पड़ता है । अर्थकी प्राप्ति बिना तबियतको
मारनेके नहीं हो सकती । यदि नाच रंग, खेल कूद या भोग
विलासमें ही वह समय व्यतीत कर दिया जावे जो अर्थके उपा-
र्जन करनेमें व्यय होना चाहिये तो धन कैसे प्राप्त होगा। इस-
लिये समझ मनुष्यको यह शिक्षा देती है कि थोड़ा बहुत इन्द्रियों
को मार कर तीनों प्रकारकी आवश्यक्ताओंके लिये यथेष्ट धन
प्राप्त करे । कहानीमें गायसे मतलब इन्द्रियसमूहसे ही है।
दुनिया वह बाज़ार है जहां अर्थकी प्राप्ति होसकती है। इसलिये

कहानीमें नवयुवकको बताया गया है कि यह बछिया तेरी मिलकियत है। इसे बाज़ारमें लेजाकर तीन अशरफियोंके बदले बेंचडाल। साधरण मनुष्य यही समझते हैं कि नफ़सकी बछिया में इतनीही सुख सम्पत्ति प्रदान करनेकी शक्ति है इससे अधिक नहीं। वरन् जिस किसीका शुभ उदय हो गया है और पिछली योनिमें पुण्य करके आया है उसको आत्मा और उसके गुणों का बोध हो जाता है और उस समय वह इस लोक और पर-लोक दोनोंमें सुख प्राप्तिका इच्छुक होता है। तब उसको इस बात का भी ज्ञान हो जाता है कि नफ़सकी बछिया दोनों लोकोंमें उसको सुख सम्पत्ति प्राप्त करा सकी है। कथानकमें इसी भाव को इन शब्दोंमें दर्शाया है कि—

> "जब वह युवक अपनी बछियाको लेकर बाज़ारमें गया तो उसको मनुष्यके रूपमें एक फरिश्ता मिला और उसने उसकी बछियाके छः स्वर्ण मुहर दाम लगाये।"

यहां फरिश्ता पिछले जन्मके पुण्यकर्मका फल स्वरूप है जिसके द्वारा मनुष्यको इस बातका बोध होता है कि इन्द्रिय-बांछाओंके मारनेसे इस लोक और परलोक दोनोंमें इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है। तीन मुहर इस लोकके और तीन मुहर पर-लोकके सुखोंकी निस्बत कही गई। यह सब छः स्वर्ण मुहर हुई। यही मूल्य है जो फरिश्तेने हमारे नवयुवककी बछियाका लगाया। जिसको उस नवयुवकने अपनी मां (बुद्धि) की सलाहसे स्वीकार किया। परन्तु अब उस फरिश्तेने पहिलेसे

भी दुगुणा मोल उस बछियाका लगाया इस प्रतिज्ञा पर कि युवक अपनी मातासे उसका जिक्र न करे। यह बात तुझे बताई जाचुकी है कि साधारणज्ञानी मनुष्य नफ़्स की बछियाका मोल तीन स्वर्ण मुहर ही लगाता है। और वह व्यक्ति जिसको आत्माका बोध हो गया है उसका मोल छः स्वर्ण मुहर लगाता है। परन्तु फरिश्ता अब यह बताता है कि अब भी इसका मूल्य कम लगाया गया क्योंकि इस नफ़्सकी बछियामें स्वयं आत्मा को परमात्मापनमें विराजमान करा देनेकी शक्ति है। इसलिये अब उसका मूल्य पहिलेसे भी दुगुणा लगाया जाता है। मातासे इसका ज़िक्र न करनेका आग्रह इस बातको दर्शाता है कि साधारण बुद्धि आत्माके वास्तविक स्वरूपको ग्रहण करनेमें असमर्थ पाई जाती है। वरन् उसके साथ यह बात भी बिलकुल सत्य है कि बिना ज्ञानके मोक्ष भी नहीं मिल सकी। इसीलिये कथानक में नवयुवक अपनी माताको इस अधिक मूल्यका हाल बताता है और माता अर्थात् बुद्धि इस पर पुनः विचार करती है और फिर अन्तमें इस बातका निश्चय हो जाता है कि नवयुवक की बछियाको एक अमुक जातिके मनुष्य मुंहमांगे दाम देकर ख़रीद लेंगे।

वह लोग जो इस बछियाको ख़रीदेंगे वह इसराईली (यहूदी) लोग हैं इसराईल का शब्दार्थ ही आत्माका है। तुझे यह भी बता देना आवश्यकीय है कि बछियाकी रिवायत मोहम्मदने स्वयं नहीं गढ़ी थी परन् एक तौर पर इससे पहिले इसराईली

लोगोंमें प्रचलित थी। यद्यपि उसके असली रचयिता गोरेथ्र के समयके हिन्दू ही हैं। अस्तु; इसराईली शब्दका अर्थ यहां पर स्वात्मज्ञानीसे है। स्वात्मज्ञानीको ही परमपदकी प्राप्तिके लिये इस क्रियाकी आवश्यक्ता पड़ती है।

अव कथानकमें यह वतलाया गया है कि एक इसराईली अपने एक निकट सम्वधीके हाथसे मार डाला गया और घटना-स्थलसे एक दूर स्थान पर उसकी लाश डाल दी गई। इसका अर्थ इसप्रकार है कि अन्तरात्मा और वहिरात्मा दोनों एक दूसरे के निकटसम्वन्धी हैं। जिसमें इसराईली तो अन्तरात्मा और उसका निकटसम्वन्धी वहिरात्मा है। अज्ञानताकी दशामें अन्तरात्माका घात वहिरात्मा द्वारा होता है। कारण कि अनात्म-वादमें आत्माके लिये स्थान ही नहीं है। घटनास्थलसे दूरस्थ स्थान होनेका संकेत संसार अर्थात् आवगवनके चक्रकी ओर है कि जिसमें संसारी जीव सदैवसे ही मिथ्या पाखण्डोंमें विश्वास करता चला आया है। मूसा धर्माचार्य है जिसके सामने धर्म और अनात्मवादका नित्यका विवाद पेश होता है। ज्ञानी मनुष्यको विवेकद्वारा यह वोध हो जाता है कि आत्मा एक सत्तायुक्त पदार्थ है और वह इस वातको भी जान लेता है कि अनात्मवाद उसका घातक है। इसी वातको कथानकमें यों वर्णन किया है कि "मृतव्यक्तिके मित्रोंने कुछ अन्य मनुष्यों पर मूसाके समक्ष हत्याका अभियोग लगाया।" परन्तु अनात्म-

केवल वाद विवादसे कव कायल होता है। इस वातको

संलग्न हो। गऊकी बलिका प्रभाव तत्क्षण अपना प्रसर दिखाता है। वैराग भाव तबियतमें उमड़ा, इन्द्रियोंका दमन हुआ और तत्काल ही सर्वज्ञताके साथ जीवन मुक्तिकी अवस्था प्राप्त हुई। मृतकसे मतलब आत्मासे है जिसको अपना बोध नहीं है। धर्माचार्य महाराज कहते हैं कि यदि वाद विवादमें अनात्मवादका खण्डन करना सर्वथा संभव न भी हो, तौ भी इस अज्ञानी (मृतक) आत्मामें यदि वैराग भाव उमड़ आवे अर्थात् वह वैराग मार्ग पर पदार्पण करे तो स्वयं उसको निश्चय हो जायगा कि आत्मद्रव्य कैसा विलक्षण पदार्थ है।

कथामें जो मृतकको वध की हुई गायके अवयवसे छूना कहा है उसका अर्थ यही है कि मृतक जीवात्मा और वैराग भावमें सम्बन्ध पैदा किया जाय अर्थात् आत्मा वैरागमार्ग पर स्वयं चल पड़े।

करशमा तत्क्षण होता है। जिस किसीने पूर्ण रूपसे अपने अधमात्मा (नफ़्स अम्मारा)-को मार डाला है उसने तत्क्षण सर्वज्ञता, अमरत्व और परम पदको प्राप्त किया है। और इस बातको भी प्रत्यक्षरूपसे देख लिया है कि मृतक आत्माका हत्यारा कौन है। मोजिज़ेमें देर नहीं लगती। यह चमत्कार सदासे होता आया है और सदा होता रहेगा वरन् बछियाका पूर्णरूपसे बलिदान करना आवश्यक है। यदि नफ़्सकी बछिया पूर्णरूपसे नहीं मरी तो चमत्कार भी नहीं होगा। अपने हत्या करनेवालेका नाम मृत व्यक्तिने बताया जिसके पश्चात् वह पुनः

मृतक होकर गिर पड़ा। इसका भी यही अर्थ है कि जीवनमुक्त को स्वयं प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि अनात्मवाद ही इस आत्मा का घातक है और फिर वह पुनः शरीरको त्याग कर मोक्षस्थान को गमन कर जाता है। जहां वह सदैवके लिये अक्षय, अविनाशी पदमें तिष्ठायमान हो कर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तशक्तिके साथ अपने शुद्ध जीवनसत्तामें सब प्रकारकी कालिमाओं, दोषों, त्रुटियों और अपूर्णताओंसे रहित स्थित रहता है इसीका नाम मोक्ष है। मोक्षमें ही जीव सर्वथा शरीररहित होता है।

माताने कहा:—हे भद्र! यह उत्तम श्रेणीकी शिक्षा है जो गऊकी बलिकी कथामें भरी हुई है। मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई कि आज तूने मुझसे इसका असली भाव पूछा।

मैंने कहा:—माताजी! मैं तो बिल्कुल आश्चर्यके सागरमें डूब गया। मुझको तो इसका वहम व गुमान भी नहीं हो सक्ता था कि ऐसी धर्मपूर्ण उत्तम शिक्षा इस गन्दे पापोत्पादक वेषमें मिलेगी। इस कथाके रचयिताने अपनी अति उत्तम चतुराई दिखाई है। कारण कि एक ही चित्रकी संक्षिप्त लम्बाई चौड़ाईके भीतर उसने सर्व धर्मों एवं सिद्धांतोंका सार भर दिया है। तेरे मुखारविंदसे इसका असली भाव सुन कर मेरा हृदय हर्षसे फूला नहीं समाता। अब मुझे आशा होती है कि तेरे उपदेश द्वारा बलिदान सम्बन्धी पाखण्डोंका थोड़े ही समयमें विध्वंस हो जायगा। वास्तवमें यह इन्द्रियोंका पुञ्ज (मन) बड़ा ही विल-

त्तण है। इसको थोड़ासा मारनेसे अर्थात् मेहनत मज़दूरी इत्यादि
करनेसे मनुष्य इस जीवनके उद्देश्योंकी पूर्तिका साधन प्राप्त
करता है (यह तीन स्वर्णकी मुहर हुई)। इसको व्रतों और
नियमों द्वारा कुछ अधिक वशमें लानेसे आगामी जन्ममें स्वर्गके
सुख मिलते हैं (यह छः मुहरें हुईं)। किन्तु यदि इसको पूर्ण-
तया जड़ मूलसे नष्ट कर दिया जावे अर्थात् इसका वलिदान पर-
मात्माके नाम पर चढ़ा दिया जावे तो यह तत्त्तण हमको पर-
मात्मापनके अनंत ज्ञान, अमरत्व, परमसुख और नित्य जीवनको
प्रदान करता है (यह इसका समतुल्य स्वर्णमें मोल हुआ)।
ज्ञात होता है कि यह असली भाव अँगरेजी भाषाके निर्माताओं-
को भली भांति विदित था क्योंकि शब्द सेक्रीफ़ाइस ('Sacri-
-fice) अपने शब्दार्थमें अपने यथार्थ भावको सीधे सादे ढंगसे
प्रगट करता है। यह शब्द लेटिनी Sacri ficiumसे लिया गया
है जो Sacar (पूर्ण और पवित्र) और Facio (वनाना) से
मिलकर वना है ! सेक्रीफ़ाइस (Sacrifice = वलिदान)-का
वास्तविक अर्थ अतः ऐसे कर्मसे है, जो हमको पूर्ण अथवा
अथवा पवित्र वना सका है। किसी निरपराध पशुका रक्त
कदापि ऐसा नहीं कर सका। कारण कि रक्त विषय वासनाओं
की अपवित्रताको नहीं धो सका। सुतरां वह यथार्थमें मानुषिक
अनुकम्पाको जो निर्वाणप्राप्तिके हेतु परमावश्यक गुण है अदया
एवं कठोरतामें वदल देता है। और यदि यह कहना भी संभव
...ा कि कोई आकाशीयशक्ति रक्तसे प्रसन्न हो कर वलिकर्ताके

अपराधोंको क्षमा कर सकी अथवा उसके दोषोंको ढक सकी है तो भी यह प्रगट है, कि उसके ऐसा करनेसे कोई भी अपराधी साधु नहीं बन सक्ता। पवित्र अथवा पूर्ण बननेके लिये यह आवश्यक है कि अपराधी स्वयं प्रयत्न द्वारा अपने हृदयको बदल डाले। अँग्रजी शब्द होली (Holy)-का शब्दार्थ भी अति उत्तमताके साथ उसके यथार्थ भावको प्रगट करता है। यह ऐङ्गलो सेक्सन हैल (Hal) व प्राचीन जर्मन एवं आइसलैण्डकी भाषाके हील (Heil) और गोथिक हेल्स (Hails)से लिया गया है जिसका अर्थ पूर्ण व समूचा अथवा बाधारहित है। अस्तु यह प्रश्न नहीं है कि किसीके दोषोंको छिपाया जाय या उसके अपराध क्षमा किये जावें। सुतरां भाव अपूर्णको पूर्ण बाधामयको बाधारहित और रोगीको स्वस्थ करनेसे है। वह केवल बहिरात्माका बलिदान है जो हमको होली (Holy = पूर्ण) बना सक्ता है। जैसे जैसे दुष्प्रवृत्तियां और दुष्परिणाम, जिनसे पापकी यह अभागी मूर्ति बनी है, नष्ट होते हैं तैसे तैसे शुद्ध परमात्मस्वरूप स्वतंत्र हो कर उस व्यक्तिके जीवनमें, जो उसको नष्ट करता है, प्रगट होता है। और अनन्तर अपवित्रता और पापकी शक्तियोंके पूर्ण रूपेण नाशको प्राप्त होने पर आत्मा, जो अब इन अपवित्र एवं अशुद्ध करनेवाले कारणोंसे छुटकारा पानेके कारण पूर्ण (Whole) और पवित्र (Holy) हो गया है, साक्षात् परमात्मा हो जाता है!

हे माता! मैं आपके वचनोंसे कृतकृत्य हुआ और आपकी

इस महती कृपाका आभारी हूं। आपकी अमृतरूपी वाणी द्वारा इस गुप्त रहस्यमयी भेदको श्रवण करनेसे मेरा मोह तथा हृदय-का अन्धकार सब नष्ट हो गया और मेरे मनका विषाद जाता रहा। आपकी ऐसी महती दयाका गुणानुवाद गानेके लिये मेरी जिह्वामें सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि आपने परम दयालु हो कर जो भेद आज मुझे बतलाया है वह बड़े २ महर्षियों और पंडितोंको सहस्रों वर्षोंकी खोजसे भी प्राप्त नहीं हुआ। आपके अमित अनुग्रहसे मेरे संशयोंका विनाश हो गया, मेरे एक क्या यदि सहस्र मुख भी हो जावें तो भी आपकी अतुल दयाकी पूर्णतया प्रशंसा करना मेरे लिये असम्भव है। माता ! मैं आपका ऋणी हूं, ऋणी हूं।

माताजीने कहा:—प्रियपुत्र ! सब बातें अपने २ समय पर ही हुआ करती हैं। रहस्यवादकी गुप्त शिक्षाका अब अन्तसमय निकट आ गया है इसीलिये प्रियभद्र ! तेरे मनमें अति उत्तम अभिलाषा उस मर्मके जाननेकी उत्पन्न हुई। जा ! अब इस शुभ-संवादकी सूचना यथाशक्ति जनतामें फैला। श्रुतिदेवी तेरी और सर्व धर्म प्रेमियोंकी रक्षा करे और सबका कल्याण हो।

यह कह कर माताजी अन्तर्हित हो गईं।

ओ३म

शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!